निशा गीत

१ : प्रभात

जीवन में सभी को सफलता मिलती है, यह बात नहीं; लेकिन कम से कम डॉक्टर मधुसूदन के जीवन पर दुर्भाग्य ने असफलता की छाप नहीं लगाई थी, यह मानना होगा। जबसे उसने होश सँभाला है तब से उसकी एक मात्र इच्छा थी कि वह डॉक्टर बनेगा और वह डॉक्टर बनकर रहा भी। इतनी सफलता सभी लोगों की किस्मत में नहीं लिखी होती। अधिकांश के भाग्य में तो अपने टूटे हुए सपनों और अप्राप्त मनसूबों के लिए सिर्फ़ आहें भरना ही लिखा रहता है। सपना कामयाब हो जाय तो उसे ध्येय कहते हैं। यशस्वी ध्येय का इतिहास लिखा जाता है और वह हजारों के पढ़ने की वस्तु बन जाता है। और अयशस्वी का? वह तो अभागे भग्न-हृदय के लिये छिपाने लायक गोप्य ही रह जाता है, जिसे दुनिया की आँखें नहीं देख पातीं।

मधुसूदन की डॉक्टर बनने की इच्छा कोई शेखचिल्ली के ख़यालों जैसी हवाई बात नहीं थी। वह एक ज़बरदस्त महत्वाकाँक्षा थी, जो उसकी जाग्रत और सुप्त घड़ियों पर छाई हुई थी और जो उसके प्रत्येक हाव-भाव, चिन्तन-विचार की पार्श्वभूमि में व्याप्त थी। यह महत्वाकाँक्षा पहली बार उसके दिमाग़ में कैसे आई? यह कहना कठिन है, क्योंकि वह ऐसे शहराती पिता का लड़का नहीं था, जो 'डॉक्टर' नाम के प्राणी से परिचित हो। शहर के बच्चे सिनेमा-चित्रों, पुस्तकों या साइनबोर्डों के ज़रिये डॉक्टर शब्द या व्यक्ति के बारे में अवश्य कुछ-न-कुछ जानकारी प्राप्त कर लेते हैं,

लेकिन मधुसूदन की बात ऐसी नहीं थी। वह तो छिंदवाड़ा ज़िले के, सतपुड़ा के अंचल में बसनेवाले एक वन्यग्राम, श्रीपुर के देहाती मालगुज़ार का लड़का था, जिसका सीधा सम्पर्क वकील-डॉक्टरों से, जो वर्तमान सभ्यता की पैदाइश हैं, बहुत ही कम आता था। फिर भी, चूंकि उस ग्राम के पास से नागपुर-पचमढ़ी की पक्की सड़क गुज़रती थी और उसके डेढ़ मील के अन्तर पर रामाकोना के स्टेशन से बंगाल-नागपुर रेलवे की छोटी लाइन जाती थी, वह गाँव उस सभ्यता से बिलकुल अछूता भी नहीं था। उस पक्के रास्ते से रोज़ाना मोटर लारियाँ और कुछ मोटरकारें दौड़ा करतीं और उस रेलवे लाइन से चार पैसेन्जर गाड़ियाँ आया-जाया करतीं। उनके ज़रिये लोग ज़िले की राजधानी, छिंदवाड़ा और प्रान्त की राजधानी, नागपुर आया-जाया करते। इसलिये यह कहना भी ग़लत होगा कि मधुसूदन का जन्म-ग्राम पिछड़ा हुआ देहाती गाँव था। लेकिन सिर्फ़ इतने ही से उस बालक के डॉक्टर बनने की महत्वाकाँक्षा के सूत्र का अन्दाज़ लगाना कठिन है।

हाँ, यह हो सकता है कि चूंकि उसकी माँ की अंतिम इच्छा थी कि उसका एक मात्र पुत्र डॉक्टर बने और रोग-ग्रस्त पीड़ित लोगों की सेवा करे, मधुसूदन ने ध्रुवतारे की तरह आजीवन वह लक्ष्य अपने सामने रखा हो। वह घटना भी विचित्र है।

जब बालक मधुसूदन पाँच वर्ष का रहा होगा तब उसकी पीठ पर एक बहन हुई। बहन हुई, इसकी खुशी तो उसे हुई ही; साथ ही उसकी माँ की वेदनामय कराहों और पीड़ा की निश्वासों ने उसके कोमल हृदय पर हमेशा के लिये एक ज़ख्म खोद दिया, जिसकी याद वह कभी नहीं भूल सका। माँ को, जिसने न जाने कितनी तकलीफ़ें बरदाश्त की थीं, उसने कभी ऐसी बेबसी की हालत में नहीं देखा था। उसके लिये माँ का अर्थ था शक्ति धैर्य और अभय का अंनत ख़ज़ाना। माँ को चोर-डाकुओं, भूत-प्रेतों, चुड़ैलों,

प्लेग, महामारी, या मृत्यु से, कभी डर नहीं लगा। इसके विपरीत इनके उच्चार मात्र से मधुसूदन के रोंगटे खड़े हो जाते थे। माँ को उसने कभी बिस्तर पर पड़ा देखा ही न था। माँ उसके लिये शाश्वत विजयिनी थी, कभी भी किसी परिस्थिति से न हारने वाली। उसी माँ को प्रसूति की वेदना से कराहते देखकर उसके भावुक नन्हें हृदय पर गहरा असर पड़ा और एक विचित्र प्रकार की उदासीनता उसके जीवन में छा गई।

क्योंकि बालक मधुसूदन को याद था कि अत्यधिक पीड़ाओं के बाद जब माँ को नींद आ गई थी और उसे कुछ सेहत मिली थी, उसी समय पीला कपड़ा ओढ़ाकर और उस पर कुमकुम, पुष्प आदि छिड़ककर, उसे न जाने कहाँ ले जाया गया, जहाँ से वह फिर कभी न लौटी। और उसे अभी भी ठीक-ठीक याद है कि उस दिन उसके बापू हाय-हाय कर के एक बच्चे की तरह रोये थे, ठीक उसी तरह जैसे वह स्वयं कई बार रोया है; और उसे पूरा-पूरा याद है कि बापू ने जब शोक के आवेग में मधुसूदन को अपने हृदय से सिमटा लिया था तब उनके गरम आँसू उसके कपाल पर गिरे थे। उन आँसुओं की उष्णता भी वह ज़िन्दगी भर नहीं भूल सका। आख़िर यह बात क्या है, जो इतने बड़े 'बापू' की आँखों से पानी बहाने लगे! बात क्या है, सो तो वह न समझ सका, पर कोई बहुत बड़ी, बहुत भयंकर घटना हो गई है, इतना वह ज़रूर जान सका। आश्चर्य नहीं जो यह बात भी उसके दिल पर सदा के लिये असर कर गई।

छोटी बहन, जो पैदा हुई थी, तीन-चार दिन तक रिरियाती रही और वह भी एक दिन न जाने कहाँ चली गई? मधुसूधन को इसका कुछ बुरा नहीं लगा। जिस बहन ने माँ को इतनी व्यथा दी और बापू को इस तरह रुलाया, उससे उसे मोह न था।

फिर उसे याद आया कि अड़ोस-पड़ोस के कई लोग बापू से मिलने आए। कोई उन्हें दिलासा देते, उन्हें अकेला-अकेला न

मालूम पड़े, इसलिये कुछ दिन वहाँ रहते, मधुसूदन के गालों और सिर पर ममता से हाथ फेरते और उसकी तरफ़ देख कर कहते 'बड़ा अभागा बच्चा है बेचारा !'

उन लोगों से कई बार उसने बापू को कहते सुना कि यदि नागपुर से डॉक्टर आ जाते तो मधु की माँ बच जाती।

मधुसूदन ने अपने छोटे से दिमाग़ से खूब सोचा, आख़िर यह डॉक्टर क्या चीज़ है, जो माँ को भी उसकी असीम यन्त्रणाओं से बचा लेते। अवश्य ही वे किसी प्रकार के ईश्वर होंगे! एक दिन उसने हिम्मत करके अपने पिता से पूछा ही—"दाक्तल क्या होते हैं बापू ?"

"बेटा, डॉक्टर रोगियों को दवा देते हैं और उनकी जान बचाते हैं।"

"दाक्तल देव होते हैं ?" उसने कुछ देर सोचकर सवाल किया।

"नहीं बेटा, वे होते तो हैं आदमी ही, लेकिन जब वे मुसीबत में मदद पहुँचाते हैं और रोगियों की जान बचाते हैं तो देव जैसे ही लगते हैं।"

"हूँ !" केवल इतना ही उसके मुँह से निकला और फिर न जाने वह क्या सोचने लगा।

रात को जब वह अपने बापू की बग़ल में सोया हुआ था—सोया तो क्या, लेटा हुआ था, क्योंकि आज उसे नींद नहीं आ रही थी—एकाएक अँधेरे में पुकार उठा, 'बापू !'

"क्या बेटा तुम अभी सोये नहीं ?" बापू ने उसे अपनी छाती के पास समेटते हुए कहा।

"बापू, मैं दाक्तल बनूँगा, बहुत भाली द़ाक्तल ..."

"क्यों ?" बापू के विस्मित मुँह से अकस्मात् निकल गया।

"मैं लोगों की जान बचाऊँगा।"

"अच्छा बेटा ! तुम्हारी माँ की भी यही इच्छा थी।"

"तो मैं जलूल दाक्तल बनूँगा—" उसने उसी गोद में अकड़कर कहा।

"बहुत अच्छा! हमाला मधु बला छयाना है"—ऐसा कहकर बापू ने उसे छाती से लगाकर चूम लिया। मधुसूदन भी अपने बापू के वक्ष में अपना सिर घुसाकर अपने दोनों नन्हें हाथों से उन्हें जकड़कर चिपट गया। बापू की स्वीकृति पाकर उसे दूना बल मिला और उस रात वह चैन से सुख की नींद सोया।

उसी दिन उसकी डॉक्टर बनने की महत्वाकाँक्षा ने जड़ पकड़ी और जिस तरह झाड़ के तने पर कुल्हाड़ी का निशान उसकी उम्र के साथ ही साथ बढ़ता जाता है, उसी प्रकार मधुसूदन की इच्छा भी दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगी। वह केवल इच्छा मात्र न रही, वरन् दुर्दम, अपराजेय ईप्सा हो गई, अपरिवर्त्य ध्येय बन गई। जीवन के किसी भी क्षण में, किसी भी घड़ी में उसे इस ध्येय का विस्मरण न होता।

जब वह बापू के साथ छिंदवाड़ा जाता तो अस्पताल को या डॉक्टरों के निजी दवाख़ानों को देखकर खुश हो जाता। इस समय उसकी उम्र छः-सात वर्ष की रही होगी और अब वह बारहखड़ी पढ़ चुका था, सो वह बड़े ध्यान से डॉक्टरों के साईनबोर्ड पढ़ा करता और उनकी दवाओं की शीशियाँ, गले में लटकती हुई नलियाँ, खीसे में क्लिप से लगे हुए थर्मामीटर आदि चीज़ों को ग़ौर से देखा करता, इसके आगे उसे नाटक, रामलीला या तमाशा भी फीका मालूम पड़ता।

एक बार छिंदवाड़े में, जब बापू कहीं बाहर चले गये थे, मधुसूदन सब की आँख बचाकर चुपचाप घर से खिसक गया और दो-तीन घण्टे तक न जाने कहाँ भटकता रहा। बापू ने लौटकर उसे नदारद पाया तो घबड़ाये और खोज शुरू की तो देखा कि जनाब रानीगंज में एक डॉक्टर के दवाख़ाने के सामने की पुलिया

पर मज़े से बैठे हैं और डॉक्टर क्या-क्या करते हैं, इसकी तरफ़ एकटक देख रहे हैं !

उसके गाँव में जब कभी डिस्ट्रिक्ट कौंसिल के टूरिंग डॉक्टर आ जाते तो वह उन्हें कितनी श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखता ! मानो कोई भगवान् ही आ गए ! उनके दवाओं के बक्स को या नली को उनकी आँख बचाकर एक बार भी छू पाता तो बड़ा खुश होता और फिर अपने दोस्तों से इस कर्तृत्व का बड़ी शान से वर्णन करता ।

एक बार पाठशाला में मास्टर साहब ने लड़कों से पूछा "बड़े होने पर तुम क्या बनोगे ?"

"पटवारी," एक ने उत्तर दिया । देहात में पटवारी की जो इज्ज़त होती है, उससे वह प्रभावित था ।

"पुलिस का सिपाही," दूसरे ने कहा, जिसने हफ़्ते के बाज़ार में नीली वर्दी की शान-शौक़त देखी थी ।

"मास्टर," तीसरे बालक ने कहा, जो किसी दूसरे को छड़ी मार सके, इतना सामर्थ्य पाने के लिये लालायित था । मास्टर साहब का चेहरा खुशी से फूल उठा । बोले—"शाबाश !"

"और तू रे मधु ?"

"मैं दाक्तल बनूँगा !" उसने अभिमान से कहा ।

"छिः, तू क्या बनेगा डॉक्टर !" मास्टर साहब ने दुतकारते हुए-से कहा ।

"आँ, बनूँगा न—?" कहते कहते उसका मुँह रुआँसा हो गया और आँखों में पानी छलक आया । फिर वह पाठशाला में नहीं बैठ सका । घर जाकर पिता के पास रोने लगा । जब उन्होंने दिलासा दिया कि नहीं, मास्टर साहब ग़लत कहते हैं, तू डॉक्टर ज़रूर बनेगा, तब कहीं उसे तसल्ली हुई । पर इसके बाद वह अपने मास्टर साहब को मन में कभी मुआफ़ नहीं कर सका ।

बापू से कह कर उसने छिंदवाड़े से एक रबड़ की नली और एक काँच की पुंगरिया मँगा ली और श्रीपुर के साप्ताहिक हाट से छः-सात भिन्न-भिन्न रंग की शीशियाँ ख़रीद लाया। टीन के गोल भिन्नी जैसे टुकड़े को काटकर उसे रबड़ की नली के बीचोबीच डोर से बाँधकर उसका 'स्टेथस्कोप' बनाया। काँच की नली का थर्मामीटर बना। फिर दुअन्नी का एक हरा काँच का चश्मा भी ख़रीदा गया। लाल-नीली-हरी शीशियों में पानी भरा गया और फिर किसी में शक्कर, किसी में नमक और किसी में दोनों घोले गए! फिर एक काग़ज के टुकड़े पर, स्याही में लकड़ी डुबो कर, टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखा गया—"डॉक्टरखाना!" डॉक्टर साहब शान से वही दुअन्नी वाला चश्मा लगाकर तिपाई पर बैठ गये और मरीज़ों की राह देखने लगे।

पड़ोस की साढ़े-चार वर्षीया मुन्नी मुँह बनाती हुई आई और कराहती हुई बोली—"दाक्तल छाब! छिल दुखता है!"

"ओह, सिर दुखता है!" डॉक्टर साहब बोले! इस समय उनकी उम्र आठ वर्ष की थी और ज़बान सुधर चुकी थी। "अभी ठीक कर देता हूँ—घबड़ाओ मत!"

और उन्होंने अपना 'स्टेथस्कोप'—वही रबड़ की नली और ठीन की भिन्नी वाला—मुन्नी के सिर पर रख दिया और कहा—"साँस लो!"

"छाँछ कैछी?" मुन्नी न समझ सकी।

"अरे, तुम साँस लेना नहीं जानतीं? अच्छा, जाने दो। यह दवाई पीलो।" ऐसा कहकर डॉक्टर साहब ने नमक के घोल की एक खूराक मुन्नी को पिला दी!

"ऊँ, खत्ती है," मुन्नी ने नाक सिकोड़ते हुए मुँह बनाया।

"अच्छा तो लो, यह दूसरी दवा पीलो," ऐसा कहकर डॉक्टर साहब ने चट से शक्कर का घोल पिला दिया। उन्हें डर था कि कहीं मरीज़ अप्रिय दवा से घबड़ाकर दूर रहने लगे तो फिर उनकी

डॉक्टरी का क्या हाल होगा !

इस प्रकार यह 'डॉक्टरी' का खेल कई बार खेला गया।

एक बार दशहरे के समय बच्चों ने रामलीला खेलना तय किया। सलाह हुई कि मधुसूदन को राम का पार्ट दिया जाय, क्योंकि वह देखने में सुन्दर और गौरवर्ण था। पर उसने अपनी वही रट लगाई—"मैं डॉक्टर बनूँगा!"

"रामलीला में डॉक्टर का काम नहीं है," चौथी कक्षा के गोविन्द ने रुखाई से कहा, जो उम्र में उससे चार साल बड़ा था और रामलीला के आयोजन का कारिन्दा था।

"कैसे नहीं है ! वानरों और राक्षसों की लड़ाई में जो ज़ख्मी होंगे, उन्हें इलाज की ज़रूरत न होगी ?"

"नहीं होगी—तू डॉक्टर बनेगा तो फिर राम कौन बनेगा ?"

"लक्खू बनेगा—"

"नहीं !"

"तो मैं भी राम नहीं बनूँगा—" ऐसा कहकर दरअसल मधुसूदन उदास होकर एक कोने में जा बैठा।

गोविन्द को गुस्सा आया। एक तो पार्ट करनेवाले कम और फिर उसमें मधुसूदन जैसे होशियार लड़के का असहयोग। गुस्सा तो ऐसा आया कि उसे कस कर तमाचा जड़ दे, लेकिन फिर इतने आदमी कहाँ हैं, यह सोचकर केवल उसकी तौहीन करने में ही उसने संतोष माना।

"तो फिर तुझे परदे भी खींचना होंगे।"

"हाँ खीचूँगा।"

"और इलाज सिर्फ़ ज़ख्मी वानरों का करना होगा, राक्षसों का नहीं ?"

"क्यों ? मैं तो जो ज़ख्मी हैं, उन सब का इलाज करूँगा।"

"नहीं राक्षस दैत्य होते हैं, ख़राब होते हैं।"

"ऊँ !"--कहकर वह चुप हो रहा। इतने में मुन्नी आई और बोली--"मधु अगल लाम नई बनेगा तो अम भी छीता नई बनेंगे !"

बस, फिर क्या था--'डेडलॉक' हो गया। मुन्नी के ज़ोर देने पर तथा बहुत कुछ बहस-मुबाहसा होने के बाद समझौता हुआ कि जब उसका पार्ट नहीं रहेगा तब वह परदे के पीछे ज़ख़्मियों का इलाज भी करेगा और उसमें वानर-राक्षस दोनों रहेंगे।

इस तरह हँसते-खेलते, मीठी-कड़वी स्मृतियों के बीच में बचपन बीत गया।

मधुसूदन ने यौवन के प्राँगण में पदार्पण किया। छिंदवाड़ा के गवर्नमेंट हाई स्कूल से वह मैट्रिक पास हुआ और उसके बापू ने अपने वचन के अनुसार उसे 'बॉयोलॉजी' पढ़ने के लिए नागपुर के कॉलेज में भरती करा दिया, ताकि वह 'इंटर' पास हो जाने के बाद मेडिकल कॉलेज का कोर्स ले सके। उनकी माली हालत न बहुत अच्छी थी, न बहुत ख़राब। कन्हान नदी की कृपा और सतपुड़ा के जंगल के प्रसाद के कारण उनकी ज़मीन इतना ज़रूर दे देती कि वे खा-पीकर सुखी थे, और यदि ऐसा न भी होता तब भी वे मधुसूदन को डॉक्टर बनाने के लिये सारी सुविधाएँ देने में कोई कसेर न रखते, फिर चाहे उन्हें उसके लिए कर्ज ही लेना पड़ता, या अपनी जायदाद का कुछ हिस्सा बेचना पड़ता, क्योंकि लड़का डॉक्टर बने, यह केवल उनकी या मधुसूदन की ही इच्छा नहीं थीं, वरन् इससे भी अधिक उनकी परमप्रिय स्वर्गीया पत्नी की अन्तिम इच्छा भी थी--

मधु की माँ अधिक पढ़ी-लिखी नहीं थीं- उन्हें केवल अक्षर ज्ञान था और वे रामायण, महाभारत आदि मज़े से पढ़ लिया करती थीं, किन्तु सांसारिक बातों में अत्यन्त व्यवहार-कुशल और प्रकृति से धर्म-परायण और ईश्वर-भीरु थीं। भारतीय संस्कृति और

नारीत्व की समस्त शुभ बातें उनमें थीं, इसी कारण उनके पति उन पर अतिशय प्रेम और भक्ति रखते थे। उनका कौटुम्बिक जीवन खूब सुखी था, किन्तु उनकी दूसरी और अन्तिम प्रसूति में अत्यधिक रक्त-स्राव के कारण उनकी शक्ति क्षीण हो गई और वे चौथे दिन ही संसार से चल बसीं। प्रसूति के बाद ही भासने लगा था कि उनका अन्तिम समय आ रहा है। इसलिये उन्होंने अपने पति से कहा था कि इस देश की बाल-मृत्यु की संख्या कम करने के लिये उचित स्वास्थ्य, शिक्षा और इलाज की व्यवस्था होना ज़रूरी है। इसलिये मैं चाहती हूँ कि मेरा मधु डॉक्टर बने और इसी कार्य में अपना जीवन लगा दे। मधुसूदन तथा उसके पिता को यह अन्तिम शब्द वेद-वाक्य की तरह प्रमाण थे और उसी दिन उस बालक का भविष्य निश्चित हो गया।

और जब 'इंटर' पास होने के बाद मधुसूदन बापू के चरण छूकर बम्बई डॉक्टरी पढ़ने के लिये रवाना हुआ तो उन्होंने उसे छाती से लगा लिया और वे गद्गद् होकर बोले—"जाओ बेटा! तुम्हारी शिक्षा की यह अन्तिम मंज़िल है। खूब मन लगाकर पढ़ो। रुपये-पैसे की फ़िक्र मत करना। पाँच साल बाद जब डॉक्टर बन-कर लौटोगे तभी तुम्हारी माँ की आत्मा को शांति मिलेगी। उनका कृपा-छत्र सदैव तुम्हारी रक्षा करे!" ऐसा कहते कहते अपनी देवता तुल्य पत्नी की याद आते ही उनकी आँखों में आँसू आ गये और गला रुँध गया।

मधुसूदन भी द्रवित हो गया और पिता की छाती से और भी ज़ोर से सिमटकर केवल पुकार उठा—"बापू!"

उस एक पुकार में न जाने क्या-क्या भावनाएँ भरी थीं! मानो वह उस एक आर्त संबोधन में कह रहा था कि बापू, आप ही मेरी माँ हैं, आप ही मेरे पिता हैं, माँ की आज्ञा और आपकी इच्छा पूरी करने के लिये अपने रक्त की एक-एक बूँद ख़र्च कर देना मेरा

कर्त्तव्य है। उसे मैं अवश्य पूरा करूँगा। बापू ! आप निश्चिन्त रहें।

उसके पिता ने भी मानो मधुसूदन के इस मूक आश्वासन को सुन लिया और उसके सिर के बालों को चूमकर अत्यन्त स्नेह से उसे बिदा दी।

—:०:—

२ : मध्यान्ह

बम्बई के किंग एडवर्ड मेमोरियल हॉस्पिटल के मैटर्निटी वार्ड (प्रसूति विभाग) का एक कमरा।

आज मधुसूदन की देखरेख में जचकी का यह बीसवाँ 'केस' है—उन्नीस पूरे हो चुके हैं; और आज यह आख़िरी 'केस' पूरा करने के बाद उसे फाइनल एम. बी. बी. एस. की परीक्षा में शरीक होने की इजाज़त मिल जायगी। कालेज का नियम है कि जब तक विद्यार्थी प्रसूति के 'बीस केसेज़' पूरे नहीं कर लेता तब तक उसे यह इजाज़त नहीं मिल सकती। इसलिये, आज उसकी एक ज़िम्मेदारी पूरी हो जायगी. इसका उसे संतोष है, आनन्द भी है। अब तक उसके हाथ की सारी प्रसूतियाँ सफल हुई थीं, इसलिये आज भी वह सफल होगी, इसका उसे आत्म-विश्वास था।

हमेशा की तरह आज भी उसके साथ एक हॉस्पिटल-नर्स थी, पर उसकी ओर उसका विशेष ध्यान नहीं गया। नर्सें सदैव बदला करती थीं, और वह स्वभाव से ऐसा आदमी नहीं था जो स्त्रियों से बिना ज़रूरत बात करे। कई डाक्टर, विद्यार्थी और नर्सों के बीच में हँसी-मज़ाक, प्रेम-सम्बन्ध, प्रणयाराधन आदि चला करता था और ऐसी कुछ बातें कभी-कभी मधुसूदन की नज़रों में भी आ जाती थीं, पर वह स्वयं कभी इस ओर आकर्षित नहीं हुआ था। अपने काम से काम रखता था और उसमें इतना आनन्द लेता था और इतना परिश्रम करता था कि इन बातों की ओर ध्यान देने के लिये उसके पास समय ही नहीं बचता था।

इलाज और परिचर्या के काम से उसे गहरी दिलचस्पी थी और बरसों के सतत चिन्तन से दरअसल उसका स्वभाव एक आदर्श डॉक्टर के योग्य ही बन गया था। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक किसी आविष्कार के पीछे अपनी भूख-प्यास भूल जाता है, वही हाल मधुसूदन का हो गया था। उसके अध्यापक-डॉक्टरों ने भी उसकी लगन, परिश्रम और महत्वाकाँक्षा देखकर दाँतों तले उँगलियाँ दबाई थीं।

जैसे-जैसे अन्तिम इम्तहान नज़दीक आ रहा था, वैसे-वैसे उसके दिल में एक विचित्र प्रकार का संतोष एवं आनन्द भरता जाता था कि जिस महत्वाकाँक्षा के स्वप्न देखते-देखते उसने इतने वर्ष बिताये हैं, उसके सफल होने के दिन नज़दीक आ रहे हैं। इसलिये उसका उत्साह और उसकी मेहनत एवं तल्लीनता में दिन-प्रति-दिन वृद्धि होती जाती। ऐसे ध्येय-निष्ठ, कर्त्तव्य-दक्ष, दुर्जेय-महत्वाकाँक्षी युवक को रमणी के स्मितों या कटाक्षों की मोहिनी किस तरह प्रभावित कर सकती थी ? इन बातों से वह अलग-अलग-सा, अछूता-सा रहता था।

उसने अपने उस बीसवें 'केस' की तरफ़ देखा—

वह एक गुजराती युवती थी। आयु अठारह-उन्नीस ! दुबली-पतली, जिसका कटि-प्रदेश अतिशय सँकरा। चेहरे पर पीलापन था, और आँखों की रोशनी फीकी थी, जिससे रक्त की कमी स्पष्ट ज़ाहिर हो रही थी। प्रसूति की असह्य वेदना से उसके कपाल पर पसीने की बड़ी-बड़ी बूँदें चमक रही थीं और वह पीड़ा के कारण इतनी बेचैन, इतनी अस्वस्थ थी कि पन्द्रह सेकेण्ड भी एक करवट पर नहीं लेट सकती थी। कभी-कभी तो वेदना की उत्कट लहर के कारण वह निष्प्रभ होकर, मूर्छित-सी पड़ जाती और एकाध मिनट शांत पड़ी रहकर फिर उसकी करवटें और आहें शुरू हो जातीं।

मधुसूदन ने उसकी भयभीत आँखों की तरफ़ देखा—लक्षण

अच्छे नहीं मालूम पड़ते थे ।

उसकी व्यथा देखी नहीं जाती थी और मधुसूदन भी जो अब तक मरीज़ों के दुःखों और पीड़ाओं को देखने का आदी हो गया था, विचलित हो गया ।

तीन घंटों के असीम क्लेशों के बाद, जो उसे तीन युग की तरह लगे, प्रसूति हुई और एक अत्यन्त सुन्दर, गौर-वर्ण बालक जन्मा ।

किन्तु नियति का खेल देखिये, बालक का जन्म हुआ और माँ की मृत्यु ! दोनों साथ-साथ !

जन्म और मरण का इतना तादात्म्य ! बुझने के पहले एक दीप-शिखा का दूसरी दीपशिखा को प्रज्ज्वलित करने के लिये प्राण-समर्पण !

मधुसूदन ने आसन्न-मरणा को बचाने के लिये कई इंजेक्शन लगाये, दवाइयाँ पिलाईं, लेकिन कोइ नतीजा न निकला। दुर्भाग्य की बात कि माँ अपने पुत्र का मुख भी न देख सकी ।

और जब यह निश्चित तौर पर मालूम हो गया कि माँ की प्राण-ज्योति बुझ गई है तब वह असहाय होकर सिर नीचे झुका कर खड़ा रहा—प्रकृति की दुर्दम्य शक्तियों के सामने पूरी तरह पराजित, पछाड़ खाया हुआ !

और फिर उसने उस नवागत शिशु की ओर देखा जो नर्स के हाथों में था । उस मातृ-विहीन शिशु को देखकर उसके हृदय में करुण स्रोत उमड़ पड़ा । उसे अपनी स्वतः की मातृहीन, दयनीय बाल्यावस्था का स्मरण हो आया और उसकी आँखें कातर हो उठीं ।

उसने देखा कि बच्चा रो रहा है और नर्स की आँखें वात्सल्य से उसकी ओर एकटक देख रही हैं। नर्स की उस एक दृष्टि में कौन-कौन सी भावनाएँ थीं, यह कहना कठिन है—मातृत्व का

18021

दुलार, प्यार करुणा और सहानुभूति ! नारी भावना-प्रवण होती है, यह वह जानता था, पर एक अनजाने शिशु के दुर्भाग्य से इस प्रकार विचलित होते हुए उसने किसी नारी को नहीं देखा था, और आज तक उसका स्त्रियों से जो सम्पर्क आया था, वह केवल नर्सों और लेडी डॉक्टरों से ही था।

और फिर उसने देखा कि नर्स का भी झुका हुआ सर उठा और उसकी आँखें मधुसूदन की आँखों से मिल गईं।

दोनों ने अनुभव किया कि उनके नेत्रों में एक ही-से भाव प्रतिबिम्बित हुए हैं, एक ही-सी गहनता, एक ही-सी आर्द्रता ! दो क्षण के लिये उनकी दृष्टि स्थिर हो गई और फिर उन्हें लगा कि उन दोनों ने मानो एक दूसरे को पहचान लिया। ऐसा प्रतीत हुआ कि उस मूक अवलोकन और प्रत्यावलोकन में उन दोनों व्यक्तियों ने समझ लिया कि उनकी आत्माएँ और अन्तःकरण एक ही तत्व के बने हैं।

और यह सब हुआ उस व्यथा-युक्त गुजराती महिला की मृत्यु की साक्षी में, उसी के अनाथ शिशु के सान्निध्य में।

और यद्यपि मधुसूदन और वह नर्स पहली ही बार मिले थे तथापि उन्हें लगा कि वे पूर्व परिचित हैं। उनका परिचय कितना पुराना है, सो कहना कठिन है।

एक घण्टे बाद जब उस 'केस' की रिपोर्ट के खाने भरे जाने लगे तब मधुसूदन ने नर्स से पूछा - "आपका नाम ?"

"सुशीला राजेश्वर", सौम्य एवं स्थिर शब्दों में उत्तर मिला।

"मिस या मिसेज़ ?"

"मिसेज़—"

लिखते-लिखते मधुसूदन का हाथ रुक गया और उसने ऊपर गर्दन उठाकर नर्स की तरफ़ देखा—उसके कपाल पर कुमकुम की बिन्दी नहीं थी। नाम और पहरावे से वह निश्चय हिन्दू जान

पड़ती थी। उसने नज़र गड़ाकर देखा --अरे वह तो विधवा जान पड़ती है!

मधुसूदन के हृदय को आघात-सा लगा। उसने एक दीर्घ निःश्वास लिया।

नर्स सुशीला ने भी मधुसूदन की तरफ़ देखा। उसकी दृष्टि में कृतज्ञता का जो भाव था, उससे यह स्पष्ट था कि वह मधुसूदन की भावनाओं को समझ सकी है।

आध घण्टे में हाउस-सर्जन के हाथ में रिपोर्ट देकर मधुसूदन अपने डेरे पर लौट गया।

—:०:—

उस रात्रि को मधुसूदन जल्दी नहीं सो सका। उस गुजराती महिला का अतीव व्यथा से काला पड़ा हुआ चेहरा उसे बार-बार याद आ रहा था। प्रसूति का यह पहला 'केस' था जिसमें वह असफल हुआ था। हालांकि वह जानता था कि वह स्त्री अत्यंत कमज़ोर थी—मातृत्व की ज़िम्मेदारी सँभालने के लिए एक दम अयोग्य। बम्बई की गन्दी चालों में शुद्ध वायु और प्रकाश से वंचित वातावरण में वह अपने पति के साथ रहती थी, जो बैंक में पचहत्तर रुपये पर क्लर्क था। नितान्त परिश्रम और अस्वास्थ्यकर भोजन के कारण उसकी जीवन-शक्ति पहले ही क्षीण हो गई थी। उस पर फिर मातृत्व की यह ज़िम्मेदारी! अगर साल भर पहले उससे सलाह ली जाती तो वह ज़रूर ऑपरेशन कराकर उसे मातृपद के अयोग्य बना देता, क्योंकि यह ज़ाहिर था कि ऐसी स्त्री प्रसूति के बाद बच नहीं सकती थी और बच्चा यदि जीवित पैदा हुआ भी तो ज्यादा दिनों तक नहीं बच सकता था।

न जाने इस प्रकार की कितनी स्त्रियाँ—हज़ारों, लाखों, इस अभागे देश में नित्य मर जाया करती हैं। उनका जीवन जैसे पानी का बुलबुला—उठा नहीं कि फूटा। जो मर गई, उसके नाम पर उसके निकट के सम्बन्धी दो-चार आँसू बहाकर उन्हें चट से पोंछ लेते और फिर अपनी मज़दूरी में—अविश्रान्त परिश्रम के चक्र में—फँस जाते। ज्यादा देर रोने को फ़ुरसत कहाँ। यह रोना भी तो अमीरों के शौक की बात है। और फिर रोज़ मरे, उसके लिये कौन रोये?

इसी सिलसिले में उसे अपनी माँ की मृत्यु की याद हो आई, जिसका हाल उसने अपने बापू के मुँह से सुना था। उसे भी अपने प्राण इसी भयंकर प्रसूति में गँवाने पड़े थे और यदि समय पर डॉक्टर मिल जाता तो वे बच भी सकते थे। इसी कारण उसके मन में यह ज़बरदस्त इच्छा भर गई थी कि वह किसी आदर्श-प्रिय समाजसेवी लेडी डॉक्टर की सहायता से अपने दवाखाने में एक प्रसूति विभाग खोलेगा, जिसमें ग़रीब-अमीर सब स्त्रियों के लिए अच्छा इन्तज़ाम होगा और माँ की अन्तिम इच्छा के ऋण से वह इस तरह कुछ अंश में मुक्त भी हो सकेगा।

पर ऐसी लेडी डॉक्टर कहाँ मिलेगी जो उस जैसी ध्येय-निष्ठ हो और लोक-सेवा के व्रत से प्रेरित हो, जिसका मुख्य लक्ष्य पैसा न हो, सेवा हो।

और उसे तुरन्त नर्स सुशीला राजेश्वर का स्मरण हुआ! पर वह डॉक्टर तो नहीं है, सिर्फ़ नर्स ही तो है! और वह क्यों बम्बई छोड़कर मध्यप्रान्त में आवेगी, जहाँ वह अपनी प्रैक्टिस शुरु करना चाहता है। पर यह सब दूर की बात है।

अन्धकार में भी उसे आँखों के सामने नर्स सुशीला का चेहरा स्पष्ट दिखाई दे रहा था। देखने में न वह सुन्दर थी, न कुरूप। रंग गेहुँआ, डील-डौल ऊँचा-पूरा, हाथ-पैर मज़बूत, आँखें बड़ी-बड़ी। उसकी आकृति देखकर मेडिकल कॉलेज के विद्यार्थियों ने उसका नाम 'अम्मा' रख छोड़ा था। उम्र होगी चौंतीस-पैंतीस। वह नित्य दूध जैसी धुली शुभ्र साड़ी ही पहना करती थी।

वह अक्सर बहुत कम बातचीत करती थी। हँसते हुए भी उसे बहुत कम लोगों ने देखा होगा। उसका मज़ाक उड़ाना या उससे गुस्ताख़ी करना किसी के बूते की बात नहीं थी। यहाँ तक कि अस्पताल के हाउस-सर्जन और दीगर डाक्टर भी उससे बड़े अदब के साथ पेश आते थे। उसके व्यक्तित्व में ही कुछ ऐसी बात थी

जिसका लोगों पर तुरन्त असर पड़ता था। जब वह ऑपरेशन थियेटर में या किसी बॉर्ड में घुसती तो एक सन्नाटा-सा छा जाता। यद्यपि वह ज़बान से कुछ भी नहीं बोलती थी फिर भी उसके हाव-भाव से उसके प्रति आदर उत्पन्न हुए बगैर नहीं रहता था। 'वह अपना काम इतनी आस्था और प्रेम से करती कि मरीज़'कृतज्ञता से धन्य हो जाते। उसका दवा पिलाने का, थर्मामीटर लगाने का मलहम-पट्टी बाँधने का तरीक़ा ही कुछ ऐसा स्नेहपूर्ण था कि रोगी निहायत खुश हो उठते और हमेशा उसी की ड्यूटी की बाट जोहा करते। वॉर्ड में जब वह चक्कर लगाती तो यदि किसी रोगी का सिर टेढ़ा हो गया हो तो उसे धीरे से सीधा कर देती, यदि किसी का कम्बल नीचे लटक रहा हो तो उसे उठाकर बातरतीब ओढ़ा देती, यदि किसी को क़ हो जाय तो तुरन्त दौड़कर उसकी पीठ पर ममता से हाथ फेरने लगती और उसे हाथ-मुँह धुलाकर फिर धीरे से सुला देती। मज़ा यह कि इतना सब होने के बाद भी वह बोलती बहुत कम थी। इतने कम शब्दों में वह इतना अधिक भाव क्योंकर व्यक्त कर पाती थी, आश्चर्य है!

मधुसूदन ने देखा कि नर्स सुशीला में सौन्दर्य की वे सब बातें नहीं हैं, जिन्हें फैशनेबिल रमणियाँ इतना महत्व देती हैं—गुलाब जैसे कपोल, कमल-दल जैसे ओंठ, मृगी जैसे नेत्र, हंस जैसी ग्रीवा इत्यादि। फिर भी उसके चेहरे पर ऐसा विचित्र सा सात्विक भाव था जिसकी छाप तुरन्त पड़ती है। शरीर के सौन्दर्य से बढ़कर जो आत्मा का सौन्दर्य होता है, वह सुशीला राजेश्वर में पर्याप्त मात्रा में है, और वह उस नर्स के व्यक्तित्व में से फूट-फूट कर निकल रहा है, ऐसा भास मधुसूदन को हुआ। उस अति गहन सौन्दर्य का अवलोकन करने के लिए दृष्टि भी अति गहन होनी चाहिये जो बाह्य आडम्बर और उथले स्तरों को भेदकर अन्तर तक पहुँच सके। मधुसूदन को लगा कि सुशीला के उस एक दृष्टि-निक्षेप में, जिसमें

उसने उस मृत-जननी के सान्निध्य में, मातृहीन अनाथ शिशु को अपनी गोद में लेकर, मधुसूदन की तरफ़ देखा था, उसे इस आन्तरिक सौन्दर्य की कुछ झांकी अवश्य दिखाई दी, और उसे तुरन्त यह भान हुआ कि यह नारी और स्त्रियों से एकदम भिन्न है।

आज अस्पताल में जब उनकी आँखें मिलीं, और ऐसा जान पड़ा कि सुशीला की आँखें भी उसके हृदय की थाह ले रही हैं, तो मधुसूदन को स्मरण हो आया कि उसने इसी नर्स को कई बार केवल रोगियों के वॉर्ड में ही नहीं, वरन 'जूनी परेल' की पुरानी बस्ती में तथा कोलीवाडा के मज़दूरों तथा दरिद्रों की बस्ती में भी दवा देते तथा परिचर्या करते देखा है। वह स्वयं ग़रीबों की झोंपड़ियों में, विशेषतः कंगाल मज़दूरों की चालों में दवाइयों का बक्स लेकर बिना बुलाये घूमा करता था और उन्हें मुफ़्त दवाइयाँ दिया करता था, उस समय जबकि उसके सहाध्यायी सिनेमा में, या होटलों में सह-विद्यार्थिनियों या लेडी डॉक्टरों के साथ मौज उड़ाया करते थे। इसके पहले नर्स सुशीला की तरफ़ उसका विशेष ध्यान नहीं गया था, किन्तु आज के मूक-परिचय के बाद तो उसे वे सारी बातें याद आ गईं और वे सारे मौक़े साफ़-साफ़ उसकी आँखों के सामने नाच उठे, जब उसने इस शांत एवं लोक-सेवी परिचारिका को देखा था। और तब उसकी सेवा-निष्ठा देखकर वह दंग रह गया।

उन दोनों के बीच मुश्किल से पाँच वाक्यों का आदान-प्रदान हुआ होगा, फिर भी मधुसूदन ने अनुभव किया कि उन दोनों की मनोवृत्ति और स्वाभाव में साधर्म्य है, साम्य है, और यह देखकर उसे सन्तोष हुआ। स्वार्थ और संकीर्णता से भरे हुए इस विश्व में इस प्रकार की सेवा-वृत्ति एवं विशाल हृदय के व्यक्ति मानव के भीतर बसने वाले ईश्वरत्व के द्योतक हैं, और झूठ, धोखेज़नी और खुद-ग़रज़ी के काले बादलों में प्रकाश-स्तंभ की तरह हैं, जिनसे

दूसरे लोग पथ-प्रदर्शन पा सकते हैं।

और एक विचित्र-सा सवाल मधुसूदन के दिमाग़ में पैदा हुआ कि जिस तरह वह नर्स सुशीला के बारे में सोच रहा है, क्या वह भी इस समय उसके बारे में इसी तरह सोच रही होगी, उसके मन में यह विचार क्यों उठा, इसका उसे आश्चर्य हुआ।

—:०:—

एम० बी० बी० एस० का इम्तहान ख़त्म हो गया और मधुसूदन घर लौटा। पर्चे अच्छे हुए थे और उसे पूरी उम्मीद थी कि वह अच्छी तरह यशस्वी होगा! जब नामवरी सहित सफलता की ख़बर देनेवाला तार आया तो मधुसूदन के पिता आनंद विह्वल हो उठे। उनकी आँखों में आँसू आ गए, बोले—"भैया, आज तुम्हारी माँ होतीं तो कितनी सुखी होतीं! उनके आनंद और अभिमान की सीमा न रहती—"

मधुसूदन की आँखें भी भर आईं और वह गद्गद् होकर बोल उठा—"बापू!"

स्वर्गीया माता की इच्छा पूर्ण हुई, इसकी उसे खुशी तो थी ही, किन्तु इस यश को देखने के लिये वे ज़िन्दा नहीं हैं, इसका उसे दुख भी हुआ। आज जीवन की इतनी बड़ी विजय पाने के बाद भी माँ के अभाव का सूनापन उसके हृदय में छा गया और उसका जी भारी हो गया।

माँ! माँ!!

माँ के बारे में उसके मन में अस्पष्ट-सी स्मृतियाँ हैं, पर जितनी हैं, वे कितनी मधुर हैं! वर्षों की मानस-पूजा ने उन्हें कितना पुनीत, कितना पवित्र बना दिया था! माँ और ईश्वर के प्रति उत्पन्न श्रद्धा में कौन श्रेष्ठ थी, यह वह निर्णय नहीं कर सकता था। यथार्थ में, उसके लिये दोनों एक ही शक्ति के दो स्वरूप थे। और फिर बापू ने भी तो बचपन की कुछ घटनाएँ बतलाई थीं, जिनमें माँ के प्रेमल

हृदय की, अतुल ममता की आभा मिलती थी।

जब वह दो वर्ष का रहा होगा तब उसे चेचक की बीमारी हो गई थी। सारे वदन में फफोले पड़ गए थे। असह्य वेदना से मधु इतनी दयनीयता और करुणा से रोता था कि माँ की छाती फट जाती थी। और जब रोते-रोते उसकी शक्ति क्षीण हो जाती तब वह केवल दीनता से रिरियाने लगता। माँ दिन और रात कपास में उसे लपेट कर अपनी गोद में लेकर पलथी मारकर बैठी रहती थी, एकसी, बिना हिले-डुले! एक मिनट के लिए भी उसकी झपकी नहीं लगती थी। जब रातभर की तकलीफ़ के बाद सुबह वह थककर सो जाता तब माँ सिर्फ़ एक घण्टे के लिये उसे महरी के पास देकर प्रातः-कर्मादि के लिये छुट्टी लेती और उतने ही समय में स्नान, मातादेवी की पूजा और नाश्ता करके फिर अपनी तेईस, घण्टे की तपस्या के लिये लौट आती। इस बीच में सिवा पानी पीने के और कुछ न करती थी। बापू को तो वह बीमार मधु को हाथ तक नहीं लगाने देती, क्योंकि वह छूत की बीमारी थी। बापू बहुत कुछ कहते-सुनते, वह तनिक भी न मानती—

और इस तरह जब सातवें दिन भी चेचक का दौर कम न हुआ तब माँ घबड़ा गई। महरी ने कहा, "मालकिन, कोई मानता करो तब देवी माँ मानेंगी—"

"जो तू कहे, करने के लिये तैयार हूँ, महरी, मेरा लल्ला अच्छा हो जाय—"

"जो हनुमान के मंदिर के पास नीम का झाड़ है न, वहाँ की माता-माँ को दण्डवत् करते-करते जाकर पानी चढ़ाओ तो देवी रूठना छोड़ देगी।"

"हाँ महरी, ऐसा ही करूँगी।"

मानता बोल दी गई। और चमत्कार की बात है कि दूसरे दिन से ही बुख़ार का दौर कम होने लगा। सात दिन के बाद फफोले

सूखने लगे और एक महीने के अन्दर ही मधु चंगा हो गया। माँ की तपस्या सफल हुई—

माँ अपनी-मानता का जल चढ़ाने निकली। नहाकर गीले कपड़े पहने, ताँबे के लोटे में शुद्ध जल भरा और उसमें नीम के पत्ते छोड़ दिये। वह नीम का पेड़ घर से लगभग दो फर्लाङ्ग की दूरी पर था। माँ ने पहला साष्टांग नमस्कार किया, और फिर जहाँ हाथ थे, वहाँ पैर बढ़ाकर उठीं; फिर दूसरा साष्टांग नमस्कार किया, फिर तीसरा। इस प्रकार मन्थर गति से उनकी तीर्थ यात्रा शुरू हुई। गाँव की औरतें माँ के दर्शन करने के लिए इकट्ठा हो गईं और उनके पीछे-पीछे हो लीं। दस-बारह नमस्कार करने के बाद वे हाँफने लगतीं, फिर ज़रा सुस्तातीं, फिर आगे बढ़तीं। एक डेढ़ महीने के सतत जागरण एवं घोर परिश्रम के कारण वे सूख गई थीं। इतनी मेहनत बरदाश्त करना उनके लिए मुश्किल था। फिर भी अपनी ज़बरदस्त इच्छा-शक्ति के बल पर उन्होंने वह दो फर्लाङ्ग की यात्रा प्रायः पेट के बल रेंग कर ही की। जब उनका देवी से क़रीब सौ गज़ का अन्तर रह गया तब वे थकावट से बेहोश सी हो गईं। महरी रुँधे हुए कण्ठ से बोली—"उठो मालकिन, थोड़ा और बाक़ी है—"

पड़ोस की औरतें बोलीं—"बस, रानी माँ, ज़रा और चलना है!"

जैसे-तैसे यात्रा समाप्त हुई और ज्यों ही माँ ने माता-देवी पर पानी चढ़ाया त्यों ही उनका चेहरा अपूर्व पावन दीप्ति से जगमगा उठा और चेहरे पर समाधान की, कर्त्तव्य-पूर्ति के आनन्द की, क्षीण मुस्कराहट चमक उठी—मानो इस बात को पूरा करने के बाद वे मृत्यु का स्वागत करने के लिये भी तैयार हैं। माँ का पेट छिल गया था, उस में से रक्त प्रवाहित होने लगा था, और गीली साड़ी रक्त और मिट्टी से लथपथ थी। फिर भी उनके चेहरे पर अद्भुत

कांति थी। वे बदहवास-सी पड़ रहीं और दो घण्टे तक उठ न सकीं बस्ती के लोगों ने बाजे बजाकर तथा शंखनाद करके इस भक्ति-पूजा का जयघोष किया।

माँ को बैलगाड़ी में बिठलाकर वापिस लाया गया और इसके बाद फिर वे जो बीमार पड़ीं तो तीन महीने तक उन्होंने बिस्तर नहीं छोड़ा। पर शारीरिक पीड़ा की आत्यंतिकता के बाद भी उनकी मनःशान्ति अपूर्व थी, क्योंकि उनका बच्चा बच गया था!

बापू ने जब यह घटना बतलाई थी तब उनकी आँखों से धाराएँ बह रही थीं और मधुसूदन भी फूट-फूटकर रोने लगा था। आख़िर बच्चा ही तो ठहरा!

माँ! माँ!! तुम्हारे इस ऋण से मैं कब मुक्त हो सकूँगा? मेरे शरीर की चमड़ी की जूतियाँ भी तुम पहनतीं तो भी तुम्हारा ऋण न चुक पाता। और तुम इतनी जल्दी चली गईं कि मैं तुम्हारी कोई सेवा भी नहीं कर सका - इतनी सी भी नहीं!

आज एम॰ बी॰ बी॰ एस॰ की सफलता की ख़ुशख़बरी सुनने के बाद भी मधुसूदन के मन में माँ की सारी स्मृतियाँ जाग उठीं और हृदय रो उठा और न जाने कितनी देर तक वह रोता रहा।

मातृ-सुख उसके भाग्य में ही नहीं लिखा था। वह उसके हाथ की बात नहीं थी। पर जो उसके हाथ में था, वह यह कि माँ की इच्छा के अनुसार वह अपने डॉक्टरी-ज्ञान का उपयोग पीड़ितों की सेवा के लिये—विशेषतः स्त्री जाति के लिए, मातृजाति के लिये करे, और उसमें उसकी प्रेरक-शक्ति धन नहीं, सेवा होगी। इस व्रत को वह सफलता पूर्वक निबाह सके तो कम से कम आंशिक रूप में वह अपनी देवी तुल्य माँ की इच्छा पूरी कर सकेगा और उसकी आत्मा को शांति दे सकेगा।

इसलिये जब उसने अपने ज़िले के स्थान पर दवाख़ाना खोला तो उसके साथ प्रसूति-विभाग (मैटर्निटी होम) खोलना भी उसने

तय किया। किन्तु इसके लिये उसे उसी जैसी ध्येय-प्रेरित लेडी डॉक्टर या नर्स के सहयोग की ज़रूरत महसूस हुई। पर उस जैसे नौसिखिए की प्रैक्टिस के साथ अपनी क़िस्मत बाँधने के लिए कौन महिला तैयार होगी? यह प्रश्न भी उसे रह रह कर सताने लगा और उसे एक ही नाम याद आया—एक ही स्त्री, जिसका नाम वह जानता था—सुशीला राजेश्वर!

पर क्या वह बम्बई छोड़ कर यहाँ इस छोटे से नगर में आवेगी? पता नहीं, उसकी आर्थिक ज़िम्मेदारियाँ क्या हैं? वह विधवा तो है, लेकिन न जाने उसके कितने आश्रित हैं? फिर उस दिन की दृष्टि-भेंट के अलावा वे और कब मिले थे?

फिर भी उसके अन्दर से कोई कह रहा था, नर्स सुशीला ज़रूर सहयोग देगी। और न जाने क्यों उसे लगा कि अगर उसने इन्कार कर दिया तो फिर शुरू में ही अपशकुन हो जायगा। पर प्रयत्न तो करना ही होगा।

--:o:--

डॉक्टर मधुसूदन ने दूसरे ही दिन नर्स सुशीला राजेश्वर के नाम पत्र लिखा—

प्रिय श्रीमती राजेश्वर,

आपको स्मरण होगा कि उस दिन किंग एडवर्ड मेमोरियल हॉस्पिटल के मैटर्निटी वॉर्ड में, उस अभागी गुजराती महिला की प्रसूति के वक्त, आपका सहयोग प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे मिला था। आपने 'बाम्बे क्रॉनिकल' में पढ़ा होगा कि मैं एम० बी०, बी० एस० पास हो चुका हूँ। अब मेरा इरादा शीघ्र से शीघ्र 'प्रैक्टिस' शुरू करने का है। सरकारी नौकरी मैं करना नहीं चाहता। पिछले महीने जब इस प्रान्त के इन्सपेक्टर जनरल ऑफ सिविल हॉस्पिटल्स इस तरफ़ दौरे पर आये थे तब मैं उनसे यों ही मिला था। उसी समय उन्होंने मुझे आश्वासन दिया था—शायद वह मुझसे ख़ुश हो गये थे—कि मेरा 'रिज़ल्ट' मालूम होते ही वे मुझे फ़ौरन असिस्टैंट सर्जन के पद पर नियुक्त कर लेंगे, पर मैंने कल ही उन्हें पत्र लिख दिया है कि मैं उनकी शुभ-इच्छाओं के कारण पास तो हो चुका हूँ, किन्तु नौकरी करने का मेरा क़तई विचार नहीं है। मेरी इच्छा है कि मैं अपना स्वतन्त्र अस्पताल ही खोलूँ और अपनी निजी 'प्रैक्टिस' जमाऊँ।

इसका कारण यह है कि मेरा विश्वास है कि इस तरह जनता की, विशेषतः मातृ-जाति की, ज्यादा सेवा कर सकूँगा। धन-राशि इकट्ठा करना मेरा ध्येय नहीं है। इज्ज़त के साथ पेट चला सकूँ,

इसी में सन्तोष है। मेरी परम प्रिय माँ की मृत्यु प्रसूति में ही हुई थी। मेरी माँ अपनी यह अन्तिम इच्छा ज़ाहिर कर गई हैं कि मैं डॉक्टर बनकर, इस तरह पीड़ित और अभागी महिलाओं की सेवा करके इस देश की बाल-मृत्यु और असफल प्रसूति की संख्या को कम करने में अपना जीवन लगा दूँ। यही इच्छा आज मेरे लिये एक पवित्र आज्ञा के तौर पर है और उसे पूरी करने का मेरा दृढ़ निश्चय है।

क्या आप मेरे इस जीवन-कार्य में सहयोग दे सकेंगी? मैं यह प्रश्न पूछने का साहस इसलिये कर रहा हूँ कि उस दिन मैटर्निटी वॉर्ड में आपके व्यक्तित्व का जो स्वरूप देखा, उसने मुझ पर गहरा असर किया। उस दिन मैंने जान लिया कि आपके दिल में भी सेवा का ध्येय है, और हृदय में ममता, करुणा और सहानुभूति का सागर है, जो आदर्श रुग्ण-सेवा के लिये नितान्त आवश्यक है। मेरी यह धारणा हुई कि आप भी उसी जीवन-ध्येय से प्रेरित हैं, जो मेरे अंत:करण में समाया हुआ है। इसलिये आपके सहयोग का मेरे निकट बहुत बड़ा मूल्य है। क्या मैं आशा करूँ कि आप वह मुझे प्रदान करने की कृपा करेंगी?

मैं नहीं जानता कि आपकी आर्थिक ज़िम्मेदारियाँ क्या हैं, या आप बम्बई छोड़ना पसन्द करेंगी या नहीं, पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि पहले सवाल के बारे में आपको पछतावा न होगा, क्योंकि मैं अपनी आमदनी आपके साथ विभक्त करने के लिये तैयार हूँ। मैं आपको नौकरी के लिये नहीं, सहयोग देने के लिये आमन्त्रित कर रहा हूँ।

और बम्बई छोड़ने के बारे में तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि यहाँ की आबोहवा वहाँ से बहुत अच्छी है, और यदि आप को बम्बई से बाँधकर रखने वाली कोई विशेष ग्रंथियाँ न हों तो आप को इस सूबे का शान्त जीवन रुचिकर होगा!

मैं आपके उत्तर की अत्यंत उत्सुकता से प्रतीक्षा करूँगा। यदि आप स्वीकृति दे दें तो मैं अपने सपनों को सत्य हुआ देखने की आशा कर सकूँगा और उससे मुझे कितनी खुशी होगी, इसका अन्दाज़ आप भली-भाँति लगा सकती हैं; किन्तु यदि आप स्वीकृति न दे सकें तो ?.....

तो फिर मैं नहीं जानता कि मैं क्या करूँगा। मैं यह तो नहीं कहूँगा कि मेरे सारे सपने टूट ही जावेंगे, फिर भी उनमें शुरू में ही इतनी बाधा तो अवश्य ही पैदा हो जायगी कि जिसे सुलझाना मेरे लिये मुश्किल होगा; क्योंकि जिस नारी-जाति की मैं सेवा करना चाहता हूँ, उसके लिये यदि मुझे योग्य नारी का सहयोग न मिल सके तो मैं क्या कर सकूँगा ? और आज तो मुझे आपको छोड़कर और कोई ऐसी महिला नहीं दीख रही है। आप जानती हैं कि प्रसूति के कार्य के लिये पुरुष डॉक्टर का उपयोग तो एक हद तक ही होता है।

विशेष क्या लिखूँ इतना ही कि मेरी योजना की रूप-रेखा और भाग्य आपके उत्तर पर बहुत कुछ अवलम्बित है।

(डॉक्टर) मधुसूदन

नर्स सुशीला के हाथ में जब वह पत्र पड़ा तब उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। पत्र जितना अनपेक्षित था, उतना ही सुखद था; क्योंकि उसके व्यक्तित्व को इतना महत्व आज तक किसी ने नहीं दिया था। यह सच है कि किंग एडवर्ड मेमोरियल हॉस्पिटल में उसका रेकार्ड अच्छा था और हाउस सार्जन तथा दीगर डॉक्टर उसके काम से बहुत खुश थे, यह समाधान की बात तो थी, पर ऐसो नहीं जो हृदय को छू सके। डॉक्टर मधुसूदन के पत्र में पहली बार यह ज़ाहिर हुआ कि दुनिया में ऐसा व्यक्ति है जो उसके सहयोग की क़द्र करता है, याचना करता है—उसे नगण्य नहीं मानना है। उसे लगा कि जैसे वह नर्सों की अनगिनती संख्या में से हटकर एक अलग

नर्स-विशेष हो गई है, जो आदमी है, जिसकी ईकाई है, अलग हस्ती है ! इस भावना ने उसे बड़ा सुख दिया।

सुशीला बाल-विधवा थी । हिन्दू-समाज में विधवाओं का जीवन कैसा दूभर रहता है, यह हम सब जानते हैं। सुख और स्नेह की आर्द्रता तो उसे जैसे मिली ही नहीं। हाँ, एक प्रेम का स्थान रहा है—उसकी माँ—जो अब भी उसके पास है। वह जाति की सारस्वत ब्राह्मण है। बारह वर्ष की अवस्था में ही उसकी शादी हुई थी। और छः महीने के अन्दर ही उसके पति प्लेग के शिकार बनकर यमराज के यहाँ चले गये। इसके बाद दस-बारह वर्ष उसने कर्नाटक में ही बिताये, जहाँ उसके पति की कुछ ज़मीन थी। जब तक उसके ससुर थे तबतक उसका जीवन साधारणतः ठीक था, किन्तु उनकी मृत्यु के बाद उसके देवर उससे दुर्व्यवहार करने लगे, जिसके कारण वह अपने हिस्से की ज़मीन देवर को ही बेचकर माँ को साथ ले, पूना आ गई और सेवासदन में भरती हो गई। वहाँ मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की और बाद में बी० पी० एन० ए० का नर्सिन्ग और मिडवाइफ़री का डिप्लोमा हासिल करके बम्बई में किंग एडवर्ड मेमोरियल हॉस्पिटल में उसे नौकरी मिल गई, जहाँ अब वह पाँच-छः साल से है।

अपने प्रेम-हीन, निरानन्द जीवन की सारी शक्ति उसने परिचर्या में संचित कर दी। वह नर्स बनी तो केवल इसलिये नहीं कि उसे अपना पेट पालना था किन्तु इसलिये भी कि सेवा-कार्य से उसे दिलचस्पी थी। उसने नारी हृदय की अपनी सारी भावनाएँ, जो प्रेम और मातृत्व का स्वाभाविक ज़रिया न पा सकीं, रुग्ण-सेवा में ही विलीन कर दीं। हास्य और आनंद जीवन से उठ-सा गया, फिर भी उसके दिल में कठिनता और कटुता नहीं आई। उसके हृदय का सौहार्द्र बना रहा। यही कारण है जो अपने काम में वह इतनी स्निग्धता उँडेल सकती थी।

उस दिन उसने मधुसूदन को निकट से देखा, जब वह उस नवागत शिशु की माँ की मृत्यु से कातर हो उठा था। इसके पहले भी उसने उसे परेल की पुरानी बस्ती में मज़दूरों की सेवा करते हुए और अस्पताल में बड़ी आस्था से अपना काम करते हुए देखा था। उसके व्यक्तित्व से सिद्धान्त-निष्ठा, आदर्श-प्रियता और महत्वाकांक्षिता ज़ाहिर होती थी। उसमें हल्कापन या छिछोरापन एकदम नहीं था, जो अक्सर उसके हम-उम्र विद्यार्थियों में पाया जाता था। इतनी नर्सें और लेडी डॉक्टर उसके सम्पर्क में आईं, पर उसने किसी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। उसका ऊँचा पूरा, पुष्ठ शरीर, सुन्दर स्वास्थ्य, जो सतपुड़ा के वन्य प्रदेश की देन थी, गौर वर्ण, भरा हुआ चेहरा, बड़ी बड़ी भावुक आँखें, एकदम असर करनेवाली थीं। वह नित्य शुभ्र सूट पहना करता था जो उसके बदन पर खुलकर दीखता था। उसके व्यक्तित्व में एक अजीब प्रकार की सात्विकता थी।

आज यह सब नर्स सुशीला को याद हो आया है और वह उसके पत्र पर गंभीरता पूर्वक विचार करने लगी—

उसमें विनय कितनी है? पास तो हुआ है, 'डिस्टिंक्शन' के साथ, पर पत्र में इसका तनिक भी उल्लेख नहीं।

अन्य डाक्टरों की तरह सरकारी नौकरी से इसे मोह नहीं है। नारी-जाति की सेवा करना चाहता है, यह विशेष बात है। इसलिये क्या उसकी यह ज़िम्मेदारी नहीं है कि वह उसके कार्य में, जितना बन सके, सहयोग दे?

डा० मधुसूदन कितना मातृ-वत्सल है! माँ की अन्तिम इच्छा को ईश्वर का वाक्य मानकर वह अपना जीवन उसके लिये लगाने जा रहा है।

किन्तु उसे सबसे विगूढ़ सुख मिला उन शब्दों से जो उसने सुशीला के बारे में व्यक्त किये थे। वे सब गुण उसमें थे, यह वह

जानती थी, किन्तु और किसी आदमी ने वे उसमें नहीं देखे, और यदि देखे भी हों तो उस पर ज़ाहिर नहीं किये थे। ज़िन्दगी भर में उसकी इतनी क़द्र और किसी ने नहीं की और अब अपनेपन की इस स्नेह-रश्मि को वह छोड़ना नहीं चाहती है। बम्बई से उसे विशेष मोह नहीं था। लक्ष्मी-पुत्रों के लिये वह भले ही माया नगरी हो किन्तु जिनकी क़िस्मत में ग़रीबी और परिश्रम ही लिखा है, उनके लिये तो वह साक्षात् नरकपुरी बन बैठती है। बम्बई की उसकी जो स्मृतियाँ थीं, वे थीं केवल प्रेम-हीन जीवन की। स्त्री के लिये ऐसे जीवन का क्या अर्थ होता है, उसके कारण किस प्रकार की विरक्ति और सूक्ष्म उदासीनता आ जाती है, यह कहने की ज़रूरत नहीं।

इसलिये उसने जब माँ से डॉ० मधुसूदन के पत्र का ज़िक्र किया और उस प्रस्ताव को मानने की सलाह दी तो माँ ने भी एतराज़ नहीं किया। कर्नाटक के शांत ग्रामीण जीवन से उसे प्रेम था, इसलिये बम्बई की भीड़, भम्भड़ और बदहवास दौड़-धूप को त्याग देने में उसे कोई हिचकिचाहट नहीं मालूम पड़ी।

और तीन चार दिन के बाद ही नर्स सुशीला ने डॉक्टर मधुसूदन को उत्तर लिखा—

श्री डाक्टर साहब,

आपका कृपा पत्र मिला। हार्दिक धन्यवाद!

आपने अपने ध्येय के बारे में जो विचार व्यक्त किये हैं, उन्हें जानकर खुशी हुई। उनसे मुझे सहानुभूति है, इसलिये मैं आपके प्रस्ताव का स्वागत करती हूँ।

मेरी आर्थिक ज़िम्मेदारी इतनी ही है कि मुझे अपनी वृद्धा माँ का पेट पालना है, जो हमेशा मेरे ही साथ रहती है। अपना पेट तो है ही, जो मृत्यु पर्यन्त साथ लगा रहेगा। इससे ज्यादा पैसे का मोह मुझे है भी नहीं।

आपने मेरे बारे में जो धारणाएँ बनाई हैं, वे ग़लत साबित न हों, यही ईश्वर से प्रार्थना है। और यह भी प्रार्थना है कि वह आपके ध्येय को सफल बनाये! इसमें यदि मैं तनिक सा भी सहयोग दे सकी तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।

आपकी विनीता,
सुशीला राजेश्वर

—:o:—

डॉ० मधुसूदन ने दवाखाना शुभ मुहूर्त में खोला, ऐसा जान पड़ता है, क्योंकि उसकी प्रैक्टिस धड़ल्ले के साथ चलने लगी। नगर में उसी की योग्यता के दो डॉक्टर और थे, फिर दो-एक होमियोपैथ थे और आयुर्वेदिक इलाज करने वाले तीन-चार वैद्य भी थे। फिर भी उसका काम अच्छा चलने लगा था। यहाँ तक कि उस ज़िले के सबसे अगुआ डॉक्टर वर्मा को भी, ज़बरदस्त प्रतिस्पर्धी को देखकर, आशंका होने लगी थी। वे तो बारह वर्षों से वहाँ जमकर बैठे थे, किन्तु मधुसूदन ने उतने ही महीनों में उनका आसन हिला दिया। कमाई में भले ही वह सबसे आगे न हो, किन्तु लोकप्रियता में निसन्देह मीलों आगे था। उसका कारण है, उसका सुन्दर स्वभाव।

भिन्न-भिन्न व्यवसायों के लोगों के स्वभाव भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। कुछ तो पैदायशी ऐसे होते हैं, और कुछ उस प्रकार के जीवन की चौखट में बैठकर वैसे बन जाते हैं। जैसे, फ़ौजी सिपाही के दिल में, जिसे बन्दूक से दुश्मन को उड़ा देना बायें हाथ का खेल है, दया, ममता, कोमलता आदि से क्या सरोकार ? पुलिस का अफ़सर मानकर चलता है कि मनुष्य गुनहगार है, धोखेबाज़ है और उसे दण्ड-बल से ही ठीक रखना होगा। जेल के अधिकारी की यह सच्ची धारणा हो जाती है कि क़ैदी पापी है, बदमाश है, और उसे लात-ठोकर से ही क़ाबू में रखना जरूरी है। और बरसों नौकरी करते-करते, इसी तरह के ख़यालात रखते-रखते उनका स्वभाव ही ऐसा बन जाता है कि वे अपने बाल-बच्चों के साथ भी इसी तरह

रूखा और क्रूर व्यवहार करने लगते हैं। इनमें भी अपवाद होते हैं, यह बात अलग है।

डॉक्टरों के दिल में अक्सर पीड़ितों के लिये सहानुभूति और सेवा की भावना रहती है। यह और बात है कि मृत्यु-शय्या पर भी फ़ीस के लिए हाथ बढ़ाने वाले और जिसके मरने की सम्भावना है, उसकी दवा से हाथ खींचने वाले डॉक्टर भी मिलेंगे (अगर वहाँ पर्याप्त रक़म न मिलती हो तो) किन्तु डॉक्टर मधुसूदन की यह बात नहीं थी। उसकी रुचि और स्वभाव दोनों ही उसके व्यवसाय के उपयुक्त थे। उसे जब कभी भी किसी के यहाँ से बुलावा आता तो वह न इन्कार करता और न उसने पैसे की परवा ही की। साधन-शील और अमीरों से तो वह पैसा ले लेता था, पर ग़रीबों से तो वे जो दे देते, वही लेता। कई बार वह उनके यहाँ मुफ़्त 'विज़िट' देने गया है, और दवा भी मुफ़्त दी है। कहीं कहीं तो ऐसा भी हुआ है कि भंगियों के यहाँ दवा दी, पर उनके पास दूध और साबूदाना के लिये पैसे नहीं थे, सो वे भी अपने पास से दिये। ग़रीब विद्यार्थियों का तो उसके यहाँ ताँता लगा रहता था। हर जाति, हर फ़िरक़े के लोग उसके यहाँ इलाज के लिये आते थे। बग़ैर किसी भेद-भाव के वह उनकी मनोयोग के साथ सेवा करता। आश्चर्य नहीं जो ग़रीब उसे देवता मानते, और हर जगह उसका प्रेम से स्वागत करते थे। वह जहाँ जाता, वहाँ आनन्द एवं आह्लाद की किरणें बिखेरता। उसके चेहरे पर हमेशा मधुर मुस्कराहट रहती, आँखों में स्नेह भाव। एक तो स्वाभाविक सुन्दर व्यक्तित्व, फिर अत्यन्त आस्था-पूर्ण सेवा और मीठा स्वभाव, इसलिए वह हर क्षेत्र में बड़े प्रेम के साथ बुलाया जाता। रोगी के कमरे में क़दम रखते ही उसे लगता, उसकी आधी पीड़ा कम हो गई। उसमें मरीज़ों के दिल में आत्म-विश्वास पैदा करने का अद्भुत गुण था, जिसकी वजह से वे स्वयं इलाज में अपने दिल से मदद

करते, और कितना भी कठिन रोग क्यों न हो, वे उससे मुक्ति पाने का एतबार करने लगते। प्रत्यक्ष दवा देने की अपेक्षा यह बात विशेष महत्व की थी। उसके व्यक्तित्व का बिजली जैसा असर पड़ता। उसके हाथ में यश था, इसमें सन्देह नहीं।

ज्यों-ज्यों उसका अनुभव बढ़ता गया, उसकी जनता के स्वास्थ्य के सवाल के बारे में दिलचस्पी भी बढ़ने लगी। कितना महान है यह सवाल! ग़रीबी, निरक्षरता, गन्दगी आदि अभिशाप इन गौरवशाली एवं ऐतिहासिक देश की जनता को बरबाद कर रहे हैं। दरिद्रता इतनी कि एक जून भोजन मिलना मुश्किल। फिर रोगों के प्रतिकार की शक्ति कहाँ? ग़रीबी से बढ़कर भी कोई पाप है? इसी के कारण शिक्षा कैसे मिले, साफ़-सफ़ाई करना कैसे सीखा जाय? इतना विशाल प्रश्न हल करना किसी एक व्यक्ति या मुट्ठीभर आदमियों के बूते की बात नहीं। उसके लिये तो देश-व्यापी प्रयत्न किया जाना चाहिये और यह स्वाधीनता के बिना कैसे सम्भव हो? ग़रीबों के घोर दैन्य और दारिद्रय को देखकर मधुसूदन की आँखों में आँसू आ जाते। आख़िर इनका भी कोई जीवन है? लज्जा ढँकने के लिये वसन नहीं, पेट भरने के लिये भोजन नहीं; उनके शरीर क्या थे, हड्डी-पसली के ढाँचे मात्र! दाँत निकले हुए, गाल पिचके हुए, आँखें धँसी हुईं—मानव क्या मुर्दे हैं, जो सिर्फ साँस लेते हैं। एक क़दम उनका मृत्यु के जबड़े में सदा ही रहता है। और जहाँ रोग, महामारी, या अकाल का दौरा हुआ कि बेचारे लाखों की तादाद में पटापट मर जाते हैं—चुपचाप, सिर झुकाकर! कहते हैं, धरती माँ का प्रकोप हुआ है। मधुसूदन सोचता, जहाँ मानव जीवन इतना क्षुद्र है, जिसके जीवन-मरण का लेखा नहीं, जहाँ मनुष्य और जानवर में भेद नहीं, उस देश के दुर्भाग्य की भी कोई सीमा है?

डॉ० मधुसूदन जानता था, इतने बड़े सवाल को हल करने की ताक़त उसमें कहाँ? सो, अपने छोटे से कार्य-क्षेत्र में, ज़रा-सी

दुनिया में, वह अपनी ओर से लोगों की पीड़ा और कष्ट मिटाने की भरसक कोशिश करे, बस, यही उसका ध्येय हो सकता है। हर वक्त, हर घड़ी, उसके दिल में जनता के इस दर्द का ख़याल बना रहता और वह उनका इलाज बहुत ही आस्था से करता। पर वह जानता था कि इस तरह इस पहाड़ जैसे मसले की एक चट्टान को भी वह क़ाबू में नहीं ला सकेगा, लेकिन वह अपना फ़र्ज़ अदा करे, इसी में क्या कम सुख है?

उसके सौभाग्य से उसे नर्स सुशीला का सहयोग प्राप्त है, जो उसके आदर्श व विचारों से सहमत है। डॉ० मधुसूदन का उत्साह उसे भी छू गया है और मानो उन दोनों में होड़ लगी है कि कौन ज़्यादा परिश्रम और सेवा कर सकता है! इस होड़ में सुशीला ने उसे कई बार पराजित किया है, क्योंकि वह नारी है, जन्म-जात परिचारिका! सेवा और त्याग की प्रति-मूर्ति! इस हार में मधुसूदन को दुःख नहीं। ऐसी नर्स का सहयोग पाकर वह अपनी खुशक़िस्मती को सराहते नहीं अघाता है।

आश्चर्य नहीं जो डॉ० मधुसूदन की प्रैक्टिस और मैटर्निटी-होम धूम-धाम के साथ चल निकले। डॉ० को 'विज़िट्स' के मारे फ़ुरसत नहीं। उसके दवाखाने के सामने से भीड़ छँटती नहीं। और नर्स सुशीला को भी एक क्षण का विश्राम नहीं। उन दोनों की ख्याति नगर में ही नहीं, ज़िले भर में और आसपास के इलाक़े में फैल गई। दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद, मधुसूदन जब सोने की तैयारी में कपड़े बदलता, तब शरीर तो थका हुआ होता, किन्तु मन में एक विचित्र प्रकार का सन्तोष एवं उल्लास रहता। उसे लगता कि उसके जीवन का 'मिशन' सफल होने के लक्षण दीख रहे हैं। मन-ही-मन कहता, 'माँ, क्या तुम्हारी आत्मा को अब कुछ शान्ति मिल रही है?'

और नर्स सुशीला? उसके मन में क्या बीतती?

—:०:—

रात्रि के ग्यारह बजे का समय है। बाहर ज़ोरों से वर्षा हो रही है। घना अँधेरा है। नर्स सुशीला मैटर्निटी होम के बरामदेमें घूम रही है। उसकी चाल से कुछ बेचैनी मालूम पड़ती है। मैटर्निटी होम में छः 'बेड्स' हैं और छहों भरे हुए हैं। उनमें से तीन स्त्रियाँ मुफ़्त-प्रसूति वाली हैं और तीन मध्यम श्रेणी की हैं जो फ़ीस देंगी। इनमें से चार की प्रसूति हो चुकी है, एक को देर है, और एक है ग़रीब बसोड़न, जिसका वक्त आ गया है। वह वेदना से बेचैन है। इतनी कमज़ोर कि क्या हो, इसका पता नहीं। उसी के कारण नर्स ने डॉक्टर मधुसूदन को आने के लिये ख़बर भेजी है और उन्हीं की प्रतीक्षा में वह तेज़ी से अन्दर-बाहर टहल रही है। एक मिनट के लिये अन्दर जाती, उस बसोड़न को नज़दीक से देखती, फिर बाहर आकर डॉक्टर की मोटर-रोशनी के लिये आँखें फोड़ती।

डॉक्टर नगर के बाहरी हिस्से में, एक छोटे से बँगले में रहते थे। एक वर्ष के अन्दर ही उनकी दौड़-धूप इतनी बढ़ गई कि उन्हें एक छोटी-सी मोटर लेनी पड़ी जिसकी वे हर महीने किस्तें दिया करते। दवाखाना और प्रसूति-विभाग एक ही बिल्डिंग में थे, लेकिन वे नगर की दूसरी सीमा पर थे। उसके बाद दस-बारह मकान और होंगे। दवाखाने में चौबीसों घण्टे दो नौकर रहा करते थे। मैटर्निटी वॉर्ड एक बड़े हॉल में था, जिसके एक सिरे पर एक छोटा कमरा था, जो नर्स सुशीला का विश्राम-कमरा था। जब उसे

रातभर अस्पताल में ड्यूटी करनी पड़ती तब वह बीच-बीच में एकाध घण्टे के लिये यहाँ आकर आराम करती, जिसके लिये वहाँ एक विस्तर, एक आराम कुर्सी, एक सादी कुर्सी और एक मेज़ थी। एक अल्मारी में उसकी कुछ किताबें, कंघी, आदि, चाय-शक्कर के डिब्बे वगैरह रहते। वह कमरा प्रायः उसी का निजी कमरा था।

जब दूर से उसने डॉक्टर की मोटर का भोंपू सुना और उसकी बत्ती की रोशनी देखी, तब उसे बड़ी हिम्मत आई और उसके चेहरे पर प्रसन्नता की एक मुस्कराहट चमक उठी। आज इस बसोड़न के कारण उसे फिर एक बार डॉक्टर के दर्शन होंगे, और चूँकि यह अनपेक्षित भेंट थी, इसलिये अधिक सुखद थी।

डॉक्टर मोटर से उतर कर बरामदे में आए, इतने में ही उनके शरीर पर पानी की कई बूँदे गिर पड़ीं। अपने हाथ से चेहरे तथा बालों पर गिरे पानी को पोंछते हुए उन्होंने पूछा—"क्या हाल है ?"

"कुछ अच्छा नहीं मालूम पड़ता ?"

"वक्त हो गया है ?"

"जी हाँ, किसी भी क्षण 'डिलीवरी' हो सकती है, पर उसके बाद उसका सँभलना कठिन है।"

"हूँ !" डॉक्टर ने कहा और अपनी लम्बी-लम्बी टाँगें वॉर्ड की तरफ़ बढ़ाईं।

डॉक्टर ने इंजेक्शन दिया और एक घूँट दवा पिलाई। बसोड़न को बेहोशी आ गई जो मुश्किल से पन्द्रह मिनट टिकी होगी। फिर उसका कराहना शुरू हो गया।

डॉक्टर उसके विस्तर के पास ही स्टूल पर बैठे थे और नर्स सुशीला पलंग की दूसरी तरफ़ खड़ी थी। डॉक्टर बीच-बीच में उसके पेट पर धीरे-धीरे हाथ फेरते और कपाल का पसीना पोंछते जाते।

एक घण्टे के परिश्रम के बाद 'डिलीवरी' हुई। एक काला-

कलूटा लुकाटी जैसा बच्चा पैदा हुआ। पर बसोड़न को मूर्छा आ गई। डॉक्टर ने नाड़ी देखी तो एकदम सुस्त मालूम पड़ी। 'हार्ट' को चलाने के लिये उन्होंने फिर इंजेक्शन दिया। उसने आँखें तो खोलीं, पर उनमें अजीब शून्यता का भाव था, मानो उसने मरने की तैयारी कर ली है। ज़िन्दा रहने की जैसे उसकी रुचि नहीं है, और मौत का उसे डर नहीं। क़िस्मत में मृत्यु लिखी है सो मृत्यु होकर ही रहेगी।

बस, हिन्दुस्तान के इस प्रारब्धवाद से डॉक्टर को बहुत चिढ़ थी। मधुसूदन की यह धारणा थी कि रोगी यदि आख़िर तक हिम्मत न छोड़े और ज़िन्दा रहने की प्रबल इच्छा-शक्ति को जगाये रहे तो अक्सर वह मौत से बच सकता है। पर होता यह है कि वह बड़ी जल्दी हिम्मत हार बैठता है। ज़रा इन्फ्लुएन्ज़ा या मलेरिया का बुख़ार आया कि उसने मौत के बारे में विचार करना शुरू कर ही दिया। फिर दवाओं का क्या असर पड़े—ख़ाक?

उसके इलाज की प्रणाली में इस इच्छा-शक्ति को जाग्रत करना बहुत महत्व रखता था। नर्स सुशीला भी अब इस बात को सीख गई थी। वह बसोड़न की आँख से आँख मिलाकर बोली—

"देख तो बिटिया, कैसा खूबसूरत बच्चा है तेरा! कैसी बड़ी-बड़ी आँखें हैं, सुन्दर नाक है! और उसका सिर तो देखो कैसा बड़ा है—सरदार जैसा, और ओंठ तो कैसे लाल-लाल, पतले-पतले नाज़ुक हैं! अब हमारी रानी अपने राजकुमार को दूध पिलावेगी, उसे पालेगी, पोसेगी। वह बड़ा होगा, फिर पैसा कमावेगा, बुढ़ापे में अपनी माँ को खिलावेगा—देख तो बिटिया, कैसा प्यारा बच्चा है!"

ऐसा कहकर नर्स ने उस बच्चे को अपने हाथ में लेकर उसकी माँ की आँखों के सामने पेश किया। नर्स की मीठी वाणी का उस बसोड़न पर असर हुआ। उसके दिल में, और किसी के लिए नहीं

तो बच्चे की खातिर, ज़िन्दा रहने की ख्वाहिश पैदा हो गई और उसके उदास और निर्विकार चेहरे पर फीकी मुस्कराहट चमक उठी। ऐसा लगा कि वह चेहरा किसी पत्थर के पुतले का नहीं, जीवित मानव का है—उसमें चैतन्य आ गया।

डॉक्टर ने नर्स की चतुराई देखकर कौतुक से उसकी ओर दृष्टि-निक्षेप किया, सुशीला ने भी उसकी आँखों का भाव समझकर स्वतः को धन्य माना। बसोड़न की इस मनोदशा से लाभ उठाकर डॉक्टर ने फिर एक इन्जेक्शन लगाया और देखा कि नाड़ी की रफ़्तार कुछ तेज़ हो गई, और हाथ पैरों में, जो ठंडे हो रहे थे, कुछ उष्णता आने लगी। थोड़ी देर बाद उसकी नाड़ी भी अच्छी तरह चलने लगी और उन दोनों को—डॉक्टर और नर्स को—यक़ीन हो गया कि वह जी गई। दवा की एक खूराक और पिलाई गई जिससे इस स्त्री को नींद आने लगी, और वह थोड़ी देर में ही बड़े मजे के साथ सो गई। डॉक्टर ने सुशीला की तरफ़ देखकर फिर मुस्करा दिया, जिसके प्रत्युत्तर में नर्स ने भी अत्यन्त मधुर स्मित किया।

"मार्व्हलस, शीलाबाई, मार्व्हलस!" "डॉक्टर ने हँसकर कहा, "आपके शब्दों ने ही उसके शरीर में जान फूँक दी! तुम एक बहुत ही अच्छी माँ हो!"

"सच?"—नर्स ने पूछा। उसका चेहरा आनन्द से जगमगा उठा। डॉक्टर के इन शब्दों ने मानो उसके हृदय में चैतन्य भर दिया!

"चलिये डॉक्टर, आप ज़रा कॉफी पीलें। आपको खूब मेहनत पड़ी है—" ऐसा कहकर उसने चिन्तातुर दृष्टि से डॉक्टर के मुँह की तरफ़ देखा कि वह क्या जवाब देते हैं। अगर 'नाहीं' कर दी तो फिर उसे डॉक्टर के सान्निध्य से वंचित होना पड़ेगा, उसके मन की इच्छा तो यह थी कि वह और कुछ देर उसी के निकट रहे। कॉफ़ी तो उसके लिए निमित्त-मात्र थी।

डॉक्टर ने उसे निराश नहीं किया। उसका चित्त प्रसन्न था,

क्योंकि एक रोगी की जान बच गई थी। इसलिये वह खुशी-खुशी नर्स सुशीला के साथ हो लिया।

सुशीला अपने कमरे में, मेज़ पर रखे हुए स्टोव पर खड़े-खड़े कॉफ़ी बना रही थी और मधुसूदन उसके पीछे आराम कुर्सी पर पड़ा-पड़ा उसे निहार रहा था। आज अगर इस स्त्री का सहयोग उसे प्राप्त नहीं होता तो क्या वह अपने दवाखाने को इस तरह जमा सकता था? इसके लिए उसके मन में सदैव सुशीला के प्रति कृतज्ञ भाव रहता था। वह उससे मातहत जैसा सलूक नहीं करता था, बराबरी का रिश्ता पालता था। एक वर्ष के निकट सहवास के कारण अब वे एक दूसरे को बखूबी समझने लगे थे।

दस मिनट के अन्दर नर्स ने प्याले में कॉफ़ी उँडेलकर प्याला उसके सामने बढ़ा दिया।

"शीलाबाई—" डॉक्टर उसे इसी नाम से पुकारा करता था, जो नर्स को भी पसन्द था। उसके स्वर में अल्प-सा भावावेश था, ऐसा जान पड़ा।

"जी!"

"अगर आप यहाँ न आतीं तो मेरे स्वप्नों का क्या होता? क्या मैं अपनी प्रैक्टिस इस तरह जमा सकता था?"

"क्यों नहीं जमा सकते थे? देश के और सब डॉक्टर तो आखिर मेरे बिना काम चलाते ही हैं!"

"पर मैं नहीं चला सकता था।"

"इस तरह परावलम्बन की भावना अच्छी नहीं, डॉक्टर!"

"क्या आप दरअसल ऐसा मानती हैं कि मनुष्य किसी दूसरे व्यक्ति के सहयोग के बिना, जो उसके ध्येय को समझ सके, काम चला सकता है?"

"सिर्फ़ काम चलाने की बात हो तो चला सकता है।"

"पर जीवन?"—डॉक्टर बोल उठा। शीला यह प्रश्न सुनकर

सिहर उठी। एक विचित्र, किन्तु सुखद भावना उसके हृदय को स्पर्श कर गई।

"हाँ. जीवन भी। हमारे देश की लाखों-करोड़ों विधवाएँ क्या करती हैं ? मैं भी—" शीला ने ज़बान काट ली। डॉक्टर कातर हो उठा। नारी जाति के मूक एवं दारुण कष्ट भोगों के प्रति उसका हृदय सदैव द्रवित था। उसने सिर्फ़ एक दीर्घ वाष्पोच्छ्वास लिया। कुछ देर ठहरकर बोला, "ऐसा जीवन क्या जीवन है, शीलाबाई ?"

"इसका उत्तर मैं क्या दूँ ? यह आप उस समाज से पूछिये जिसने विधवा के जीवन को इतने सख़्त रीति-रिवाजों से जकड़कर उसे दारुण यन्त्रणाओं से भर दिया है।"

डॉक्टर कुछ न बोल सका। उसने देख लिया कि नर्स सुशीला के शांत बहिरंग के भीतर एक सुप्त ज्वालामुखी समाया हुआ है, जो वर्षों के प्रेमहीन, कष्टमय जीवन पर पला है। उसे ठण्डा करने के लिए चर्चा-विवादों की ज़रूरत नहीं, ऐसे रस-द्रव्य की ज़रूरत है जो हृदय की शुष्क भूमि का सिंचन कर सके। बात कहाँ से कहाँ चली गई।

नर्स के जीवन का यह पहलू देखकर उसे दुख तो हुआ, पर साथ ही साथ सहानुभूति भी जाग्रत हुई और उसे मन-ही-मन समाधान हुआ कि वह शीला के दूभर जीवन को कुछ सुखमय बना सकता है।

"एक बात पूछता हूँ, शीलाबाई, जवाब दोगी ?"

नर्स घबड़ा उठी, जाने वह क्या पूछना चाहता है ! फिर भी उसकी 'न' कहने की हिम्मत नहीं थी, क्योंकि डॉक्टर का दिल दुखाना उसकी जान पर आता था। बोली—

"कहिये ?"

"आपको बम्बई छोड़कर यहाँ मेरे साथ काम करने में पछतावा तो नहीं है ?"

"मैंने कभी शिकायत की है ?"

"शिकायत तो आप कभी करेंगी ही नहीं। आपके दिल में क्या है, सो जानना चाहता हूँ।"

"दिल में ?—यह काम आप छोड़ दीजिये," उसने मुँह को रूमाल से ढँकते हुए खिलखिलाकर कहा—"यह आपसे नहीं बनेगा। आप तो डॉक्टर हैं, लोगों के दिल से आपको क्या सरोकार ? आप तो सिर्फ उनके शरीर में क्या है, सो ही जानिये !"

डॉक्टर झेंप-सा गया। नर्स ने चतुराई से बात टाल दी, यह वह समझ गया; किन्तु उस आत्म-संयत नारी के हृदय में क्या है, यह जानने का कुतूहल अधिक दृढ़ हुए बिना न रहा।

—:०:—

"डॉक्टर साहब, मेरी पत्नी को न जाने क्या रोग हो गया है, ज़रा चलकर देख लीजिये न ?" एक दिन सुबह एक सेठ साहब ने आकर कहा। "बहुत उदास रहती है, हमेशा चिड़चिड़ करती है। नींद बहुत कम आती है और कभी-कभी तो पागल जैसा बर्ताव करती है।"

"क्या उम्र है ?"

"चौबीस वर्ष।"

"कोई बच्चा है ?"

"जी नहीं—शायद वही कारण हो ?"

"आपका विवाह हुए कितने वर्ष हुए ?"

"सात।"

"कोई मानसिक फ़िकर-विकर है ?"

"जी नहीं, बिलकुल नहीं। ईश्वर की दया से रुपये-पैसे की कमी नहीं है। हज़ार रुपया महीना भी ख़र्च करे तो कोई नाहीं करने वाला नहीं। कपड़े और आभूषणों की कमी नहीं। खाने-पीने के लिये जो चाहे सो हाज़िर है। घर में बीसों नौकर-चाकर हैं—"

डॉक्टर ने पति महाशय की तरफ़ बारीकी से देखा—रेशम का बंगाली कुरता, पतली मैन्चेस्टर की धोती, पैर में चमकते हुए पम्प-शू, हाथ में चाँदी की मूठदार बेंत, दो उँगलियों में हीरे और माणिक की अँगूठियाँ, बड़े-बड़े बालों में ख़ुशबूदार तेल, बदन में इत्र, जिसकी महक डॉक्टर के कन्सल्टिंग रूम में भर गई है, आँखें ज़रा लाल;

उनकी किनारों के आसपास की जगह स्याह, और सारे जिस्म से एक प्रकार की थकावट या शिथिलता का भाव। मुँह में पान भरा हुआ।

डॉक्टर ने कहा, "ज़रा चलकर देख लूँ।"

देखा कि वह स्त्री सुन्दर है, ऊपरी तौर पर स्वस्थ। स्वभाव से सरल, निरहंकारी, शीलवती! डाक्टरी जाँच करने पर शरीर में कोई खामी नहीं। जो है सो मानसिक है। डॉक्टर ने अत्यन्त स्नेह से उससे कुछ प्रश्न पूछे। उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े।

डॉक्टर ने पति महाशय से एकान्त में कहा, "क्या आप अपनी पत्नी से सच्चे दिल से प्रेम करते हैं?"

पति महाशय अकवकाए। भला ऐसा सवाल भी कोई डाक्टर इतना साफ़-साफ़ पूछता है? मन-ही-मन झल्लाए कि डॉक्टर की बिसात तो देखो, इतने बड़े लखपती से ऐसा प्रश्न पूछता है? लेकिन सँभलकर बोले—

"वाह, यह भी आपने क्या पूछा, डाक्टर साहब? पत्नी तो मेरे दिल की रानी है उसे तो मैं जान से भी ज्यादा प्यार—"

"झूठ बात है। अगर सच्चा प्रेम है तो आपकी इस शराबखोरी और बाहर-ख़याली का क्या मतलब? लक्ष्मी जैसी स्त्री है, पर आप अपने चोंचलों की वजह से उसका जीवन बर्बाद कर रहे हैं। आपकी पत्नी की सारी बीमारी मानसिक है। आपका यदि वह प्रेम पा सके और आप बाहर की ये आदतें छोड़ दें तो वह फ़ौरन अच्छी हो जायगी—"

"डॉक्टर साहब, आपको इन बातों से क्या मतलब? आप तो दवा कीजिये और जितना चाहे अपना रुपया लीजिये—" उन महाशय ने ज़रा तुनककर कहा।

"साफ़ कीजिये सेठ जी, मैं डॉक्टर हूँ, दवा-फ़रोश नहीं। मेरा फ़र्ज़ है रोगों को जड़ से मिटाना। उल्टी-सीधी, चिकनी-चुपड़ी बातें करके पैसा ऐंठना मैं भ्रष्टाचार समझता हूँ। अगर आप ज़हर

को जड़ से निकालने में मेरी मदद नहीं कर सकते तो मैं डालों और पत्तियों का इलाज नहीं कर सकता।"

और वह बिना फ़ीस लिये उठकर चला आया।

"शीलाबाई, पुरुष इस तरह स्त्री पर अत्याचार करना कब छोड़ेगा ? घर की लक्ष्मी का अपमान करके वह वेहूदा आदमी बाज़ार की औरतों के पीछे धन और शरीर बर्बाद कर रहा है, और कहता है कि मैं स्त्री को जान से ज्यादा प्यार करता हूँ। वह मूरख सोचता है कि रुपया-पैसा, आभरण और स्वादिष्ट मिष्ठान्न ही स्त्री के हृदय को संतुष्ट कर सकते है, पर वह जानता नहीं कि स्त्री के लिये प्रेम के सामने विश्व का वैभव भी तुच्छ है। सच्चे हृदय की प्रीति पाकर वह चीथड़ों और झोंपड़ों में अंधे-लँगड़े के साथ भी स्वर्ग-सुख का अनुभव कर सकती है। नारी के मन को न जानने के कारण ही इस दुनिया में जाने कितना दुख फैला हुआ है—" डॉक्टर ने अस्पताल में पहुँचते ही शीलाबाई से दुःखित अन्तःकरण से कहा।

शीलाबाई कुछ न बोली। केवल कौतुक और स्नेह से उसकी ओर देखती रही। कुछ देर ठहरकर बोली, "दुखी मत हूजिये डाक्टर! दुनिया में इतनी व्यथा भरी पड़ी है, आप कहाँ तक दूर करेंगे ?"

एक बार इसी तरह एक बड़े सेठ के यहाँ, जिनकी तीसरी शादी हुई थी और जिनको पत्नी उनकी लड़की जैसी लगती थी, डॉक्टर का बुलावा हुआ तो उसे पता चला कि शादी के आठ दिन के अन्दर उसे गुप्त बीमारी हो गई है, जिसके लिये उसके मनमौजी पति ज़िम्मेदार थे और जिसकी पीड़ा और शर्म उस वेचारी स्त्री को ज़िन्दगी भर वहन करनी पड़ेगी—जिसके लिये वह किसी भी तरह दोषी नहीं है। यहाँ फिर डाक्टर को वही न्याय दीख पड़ा जिससे उसे सख़्त चिढ़ थी - एक के गुनाह के लिए दूसरे को सज़ा !

गरिष्ट अति-भोजन से पीड़ित लोग उससे पाचन की दवा

माँगते तो वह उन्हें उपवास करने की सलाह देता था। कब्ज़ियत की बीमारी में वह परिश्रम करने की, हाथ से कोई काम करने की सलाह देता था, सुबह उठकर घूमने जाने का आग्रह करता था। ये नुस्खे कारगर तो होते, किन्तु थे अमल में लाना मुश्किल, इसलिये कुछ धनिक उससे नाराज़ हो जाते, फिर भी उसकी निरिच्छ वृत्ति और यथार्थ में हितकारी सलाह का मन-ही-मन आदर भी करते। डॉक्टर मधुसूदन ने जिव्हालोलुप और अप्राकृतिक जीवन बिताने वालों को शरीर-विज्ञान के यथार्थ सबक देने में कोई कसर नहीं उठा रखी। इससे कुछ हलकों में उसकी लोकप्रियता तो घटी, पर इसकी उसने परवाह न की। उसका दृढ़-विश्वास था कि शरीर के सारे दोष स्वाभाविक जीवन से दूर हटकर कृत्रिम जीवन बिताने में ही पैदा होते हैं। जिसका जीवन जितना अधिक कृत्रिम है, उसका स्वास्थ्य उतना ही बुरा। आहार, आचार-विचार और व्यवहार में से स्वाभाविकता गई कि दुःखों का प्रारम्भ हुआ ही समझो। इसलिये वह सदैव स्वास्थ्य की बुनियादी बातों पर ही ज़ोर देता, क्योंकि उसका विश्वास था कि देश की शरीर-प्रकृति सुदृढ़ हुए बगैर देश का कल्याण नहीं।

उसके पास तरह-तरह के लोग सलाह माँगने आते। कोई पिता अपनी उपवर कन्या के मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के प्रश्नों को लेकर आता, तो कोई अपने कालेज में पढ़नेवाले लड़के के चरित्र की उलझनों के बारे में पथ-प्रदर्शन चाहता। कोई अपनी लड़की की शादी जमाने में डॉक्टर से मदद माँगता, तो कोई अपने लड़के के विवाह-सम्बन्ध की सलाह चाहता। इन सलाह-मशविरों के इच्छुकों को उसने कभी निराश नहीं किया। इसका नतीजा यह हुआ कि उसके विषयों का दायरा बढ़ गया। लोग उससे डॉक्टरी की बात तो अलग रही, क़र्ज़-सूद, घर-बार, व्यवसाय-व्यापार आदि बातों के बारे में भी सलाह लेने आने लगे। उस पर उनका इतना

एतबार जो था। मानव-हृदय की यह शाश्वत क्षुधा रही है कि वह अपनी मुसीबतों और दुखों को व्यक्त करने के लिए किसी सहानुभूति रखनेवाले श्रवणकर्त्ता के पास जाकर अपना जी हल्का करे। इसीलिये डॉक्टर मधुसूदन ने कभी उन्हें बगैर अपना वक्त दिये लौटाया नहीं।

एक बार बड़ी मजेदार घटना हुई। एक नवयुवक वकील साहब शर्माते हुए उनके पास आये और बड़े संकोच के बाद एकान्त में डॉक्टर से बोले—

"डॉक्टर साहब, तीन साल पहले मेरा विवाह हुआ—प्रेम-विवाह था वह। उसके पहले भी मैं अपनी पत्नी से लगभग उसी अरसे तक परिचित था और हम दोनों एक दूसरे को जी-जान से प्यार करते थे। हमारा दृढ़ विश्वास था कि प्रेम शाश्वत है और केवल इसी जन्म में नहीं, जन्म-जन्मान्तर में भी वह इसी प्रकार उत्कट रूप में टिकेगा। जब विवाह हुआ तब हम जैसे सुखी कोई दम्पति न होंगे, ऐसा हमें लगा मानो चाँद हमारे हाथ में आ गया और स्वर्ग ही हमारे छोटे से मकान में उतर आया। इस क़दर परस्पर अनुरक्त थे हम। जिसने प्रीति की ऐसी अनुपम माधुरी चखी है, वही इसकी कल्पना कर सकेगा; पर....।" वह झिझक गया।

डॉक्टर को इस नवीन 'केस' से दिलचस्पी हुई। उसका कुतूहल जागा और उसने मुस्कराते हुए उसे प्रोत्साहन देकर कहा, "आप ज़रा भी संकोच मत कीजिये। आप जानते हैं कि हम डॉक्टरों का सिद्धान्त होता है कि हमें किसी भी प्रकार की कितनी ही गुप्त बातें क्यों न मालूम हों, हम उनका कभी स्फोट नहीं करते। आपस में हमें इलाज के बारे में चर्चा भी करनी पड़े तो भी हम व्यक्तियों का उल्लेख कभी नहीं करते। इसलिये आप बेफ़िक्र रहें। बगैर सारी बातें मालूम हुए हम कोई फ़ैसला भी तो नहीं दे सकते।

जी हाँ, डॉक्टर साहब, मैं आपकी ख्याति सुन चुका हूँ,

इसीलिये तो आया हूँ। पर व्यक्तिगत बातें कहते हुए संकोच तो होता ही है। ख़ैर—तो क्या कह रहा था? हाँ, हम जैसा सुखी कोई नहीं था, पर...पर न जाने क्यों, पिछले तीन-चार महीनों से हम दोनों ही महसूस कर रहे हैं कि हमारा आपस का आकर्षण कम हो रहा है और हमें डर लगता है कि कहीं हमारा प्रेम शिथिल न हो जाय! इस आशंका से मैं और मेरी पत्नी दोनों ही काँप उठते हैं; क्योंकि इसके कारण कुछ बदमिज़ाजी, कुछ चिड़-चिड़, सूक्ष्म अनबन-सी रहने लगी है। डॉक्टर साहब, हमारी समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों हो रहा है? यदि आप राह बतावें और हमें हमारी प्रथम प्रीति का संगीत लौटा दें तो आप बड़ा उपकार करेंगे," उसने आजिज़ी से कहा।

"आप दोनों का स्वास्थ्य कैसा है?"

"बिलकुल ठीक है।"

"कोई आर्थिक चिन्ता?"

"बहुत खुशहाली तो नहीं है, पर चिन्ता करने वाली ग़रीबी भी नहीं है। खाने-पीने को सभी मिल जाता है, पर ज्यादा पैसे का मोह हम दोनों को नहीं है। दोनों का प्रेम टिका रहे, बस फिर हम लोग तो किसी भी हालत में सुखी रह लेंगे।"

"आपको वैवाहिक सुख पूरी तरह प्राप्त होता है या नहीं?"

"हाँ, लेकिन पहले जैसा नहीं।"

"इसके बारे में आपने कोई साहित्य पढ़ा है?"

"विशेष तो नहीं, पर तीन-चार पुस्तकें पढ़ी होंगी। मगर इससे क्या? सच्चा प्रेम हो तो फिर सब कुछ ठीक हो जायगा न?"

"आमतौर पर यही ख़याल है, पर वह ग़लत है। दाम्पत्य-विज्ञान के भी नियम होते हैं, उनका ज्ञान परम आवश्यक है। पति-पत्नी के सम्बन्ध को सफल बनाने की मूल भित्ति प्रेम तो है, पर उसे सम्पूर्णतया विकसित करने के लिये तथा उसे परिपूर्ण

बनाने के लिये इस शास्त्र का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। इसके बिना दोनों के बीच संपूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक एकत्व की तथा विशुद्ध, स्वर्गीय, दिव्य आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। प्रेम है, इसलिये सब कुछ तय हो जायगा, ऐसा समझना भूल है। यह भी एक कला है, जिसके लिये जीवनभर प्रयत्नशील और जागरूक रहना होगा। इतना किया तो उसमें से जो अपूर्व प्रीति प्रस्फुटित होगी, वह नितान्त दिव्य, नितान्त सुन्दर और नितान्त मंगल होगी। और प्रेम की आपकी जो कल्पना है, वह उसी परिस्थिति में सफल होगी। इसके अलावा एक बात और पूछता हूँ। जब से विवाह हुआ है, तब से आपका वियोग भी हुआ है?"

"जी नहीं, विवाह के पूर्व परिचय हुआ, उसी की परिणित प्रीति में हुई और वियोग सहन नहीं हुआ, इसीलिये तो विवाह किया। फिर अपने आप वियोग क्यों आमन्त्रित किया जाय? पत्नी की माँ ने कई बुलावे भेजे, पर न वह स्वयं गई और न मैंने ही उसे भेजा।"

"आपका विवाह कहाँ हुआ था?"

"उसी के पिता के यहाँ।"

"तो अब आप उसे मैके भेज दीजिये और तीन महीने के बाद उसे लेने जायँ, तो वहाँ निश्चिन्तता पूर्वक आठ-दस दिन रहिये। फिर दोनों ही किसी नवीन जगह—किसी सुन्दर नदी, पहाड़—के निकट जाकर आठ दिन और रहें और फिर यहाँ लौट आयें और मुझे रिपोर्ट दें।"

"दवा क्या लूँ?"

"काहे की दवा? जो मैं बतला रहा हूँ, वह दवा नहीं तो क्या है? और एक बात। विवाह को तीन वर्ष हो चुके हैं। अब आपकी पत्नी की गोद में बच्चा खेलना चाहिये, समझे? इससे दोनों के बीच प्रेम-ग्रन्थि अधिक दृढ़ होगी—"

"पर क्या यह हाथ की बात है ?"

"हाँ, कई लोगों ने इसे हाथ की बात बना लिया है, इसीलिये कहता हूँ।"

"मैं समझा—"उसने लजाते हुए कहा।

पत्नी को बिदा करने के दो महीने बाद वही साहब बेताब होकर आये और कहने लगे—डॉक्टर साहब, इजाज़त दें तो अब जाकर ले आऊँ? उसकी हर आढ़े दिन चिट्ठी आती है—अब हम दोनों से यह वियोग सहन नहीं होता।"

"बस एक महीना और ठहर जाइये—"

वकील साहब ने नुस्ख़ा पाला और एक वर्ष के अन्दर ही अपनी पत्नी को डॉक्टर के मैटर्निटी होम में दाख़िल करा गये। जब उसे कन्या हुई तब उन दोनों पति-पत्नी की आँखों में प्रीति एवं आनन्द की जो आभा दीख पड़ी, वह अपूर्व थी। जब डॉक्टर मधुसूदन ने पूरा क़िस्सा नर्स सुशीला को बतलाया तो उसका हृदय कौतुक से भर गया। उसने पूछा—"इन बातों का आपको कुछ अनुभव तो नहीं है फिर आप ऐसी सलाह क्योंकर दे सकते हैं ?"

"इंस्टिंक्ट है, शीलाबाई, इंस्टिंक्ट! मेरा ख़याल है कि मैं जन्म-जात डॉक्टर हूँ, मनुष्य-स्वभाव का सहानुभूति पूर्वक अवलोकन करने से यह बात अपने आप ही आ जाती है," डॉक्टर ने हँसकर कहा।

"तो फिर आपको विवाह करने की आवश्यकता नहीं है। मेरा तो पहले ऐसा ख़याल था कि विवाह का अनुभव पाये बिना डॉक्टर पूर्णतया सफल नहीं हो सकता। पर अब शायद—" शीलाबाई ने कहा।

"वह ख़याल दुरुस्त है," डाक्टर ने बीच ही में हँसकर कहा, "और यदि योग्य स्त्री मिल जाय तो मैं अवश्य विवाह करूँगा—' उसकी आँखें विचित्र भावावेश से आलोकित हो उठीं और नर्स के

चेहरे पर गड़ गईं। शीलाबाई ने भी उसकी ओर चमककर देखा और उन दोनों की आँखें मिल गईं। कुछ क्षण के लिये वे स्थिर हो गईं, मानो दोनों ही एक दूसरे के हृदय के भावों की थाह लेना चाहते हों। और न जाने क्यों नर्स शीला ने अनुभव किया कि उसके शरीर में विद्युत की तरह एक सिरहन लहर उठी।

—:o:—

डॉक्टर मुझे दस दिन की छुट्टी दे सकेंगे ?"—एक दिन सुबह आते ही नर्स सुशीला ने पूछा।

डॉक्टर मधुसूदन 'प्रिस्क्रिप्शन' लिख रहा था। यह वाक्य सुनते ही उसके हाथ से क़लम छूट गई। चेहरे पर किंचित अस्वस्थता का, घबराहट का भाव उतर आया। बोला—

"क्यों ? क्या बात है ?"

"एक बार कर्नाटक जाना है। कल देवर का पत्र आया है। ज़मीन-जुमले की कुछ गड़बड़ है। एक बार मुझे ख़ुद अदालत में जाकर रजिस्ट्रेशन पर दस्तख़त करना होगा, वरना लम्बी मुक़दमेबाज़ी शुरू हो सकती है।"

डॉक्टर कुछ न बोला। उसने केवल एक गहरी निश्वास ली। नर्स ने देखा, उसका चेहरा कुछ उदास हो गया।

"मैटर्निटी होम के काम में कोई अड़चन नहीं होगी। मैंने मेन हॉस्पिटल की मेट्रन, मिस डेविड, से बातचीत कर ली है। वे जब ज़रूरत होगी, एक नर्स भेजेंगी और 'सीरियस केस' के वक्त ख़ुद भी हाज़िर होंगी।"

"नहीं काम की कोई फ़िक्र नहीं। वह तो मैं भी सँभाल लूँगा—" डॉक्टर ने धीरे-धीरे कहा।

"फिर ?" नर्स ने पूछा।

डॉक्टर ने एकाएक शीलाबाई की तरफ़ देखा और एक वाष्पोच्छ्वास लेकर मुँह फेर लिया। फिर पूछा—

"क्या जाना ही होगा, शीलाबाई ?"

"जी हाँ, चिट्ठी से तो यही मालूम पड़ता है। एक बार निपटा आऊँ तो अच्छा।"

"हाँ, हाँ, ठीक तो है, जब काम है तो जाना ही चाहिये," डॉक्टर ने इस ढंग से कहा मानो वह अपने मन के भावों को छिपा रहा है।

"क्या दस दिन में ही लौट आवेंगी ?"

"जी हाँ, इतने भी न लगते, पर चूँकि माँ जा रही है तो वह पाँच-सात दिन तो वहाँ रहना चाहेगी ही। उसे अपने गाँव से बड़ा प्रेम है।"

"अच्छी बात है—" डॉक्टर ने धीरे से कहा; पर बात उसे पसन्द थी, ऐसा नहीं जान पड़ा, किन्तु इससे छुटकारा भी तो नहीं है।

"मुझे स्वयं यह जाना अखर रहा है, पर डॉक्टर, क्या करूँ ? लाचार हूँ—"

"क्यों ?" डॉक्टर ने घूमकर उत्कटता से पूछा। उसकी आँखें शीलाबाई की आँखों को टटोल रही थीं।

नर्स ने केवल आँखों की किनारों से देखा और फिर वह ज़मीन की तरफ़ देखकर पैर के नाखूनों से ज़मीन कुरेदने लगी।

क्यों ? वह क्या बतलावे कि क्यों ? वह नारी है, जो अपने गहन-से-गहन भावों को कभी अपनी ज़बान पर, या चेहरे पर, या आँखों में नहीं आने देती, मानो वह उसकी सर्व-संचित गुप्त संपत्ति है, जिसका गोप्य रहना ही ज़रूरी है। दूसरों के जानने से शायद उसकी उदात्तता या पवित्रता कम हो जाती है।

नर्स सुशीला उसी दिन रात की गाड़ी से निकल पड़ी। डॉक्टर स्टेशन पर माँ-बेटी को पहुँचा आया, पर जब लौटा तो न जाने क्यों अपने हृदय में उसने अजीब शून्यता का अनुभव किया। उसे स्वयं

आश्चर्य हुआ कि वह इस बारे में इतना भावना प्रवण कैसे हो गया ! घर लौटकर बिस्तर पर लेटा तो उसके सामने पिछले डेढ़-दो वर्षों की घटनाएँ घूम गईं, ठीक उसी दिन से जब से उसका नर्स सुशीला से किंग एडवर्ड मेमोरियल हॉस्पिटल में प्रथम परिचय हुआ था। वे घटनाएँ तो क्या थीं, उसकी भावनाओं के उतार-चढ़ाव की लहरें मात्र थीं।

उस प्रथम भेंट के बाद उसे सुशीला के बारे में और कुछ याद नहीं रहा, केवल उसके अवचेतन मन में एक मधुर स्मृति मात्र रह गई जो प्रैक्टिस शुरू करते समय एक विशिष्ट ठोस रूप लेकर सामने खड़ी हुई। नतीजा यह हुआ कि नर्स सुशीला बम्बई छोड़कर, उसकी असिस्टेंट बनने तथा उसके आदर्शों और स्वप्नों को प्रत्यक्ष जगत में उतारने में मदद करने के लिये दौड़ पड़ी, क्योंकि ये आदर्श उसके मन में भी दुबके हुए बैठे थे और अवसर के अभाव में सोये थे। जब उनकी पुकार हुई तो वे भड़भड़ाकर जाग उठे और व्यक्त होने के लिए लालायित हो गये।

आज वर्ष-सवा-वर्ष से सुशीला उसके साथ काम कर रही है और उन दोनों की धारणा है कि वे दरअसल अपने ध्येय के नज़दीक जा रहे हैं, जिससे उन्हें संतोष है; किन्तु आज जब सुशीला उसके पास से दूर चली गई है, तब उसने अकस्मात् देखा कि उसका अस्तित्व केवल उसके व्यवसाय और ध्येय के लिये ही ज़रूरी नहीं है, वरन् उसके जीवन के लिये भी ज़रूरी है—निहायत ज़रूरी है। नहीं तो आज की इस शून्यता का क्या अर्थ है ?

मधुसूदन ने देखा कि ज्यों-ज्यों उन दोनों का परिचय बढ़ा, त्यों-त्यों उसने अपने हृदय में एक अपूर्व मधुरिमा को बढ़ते हुए पाया। रोज़ सुबह वह जब उससे मुस्कराकर 'गुड मॉर्निङ्ग डॉक्टर !' कहती, तो नर्स के हाव-भावों से तथा कण्ठ-स्वर से ऐसा ही जान पड़ता कि वह दरअसल डॉक्टर से मिलकर प्रसन्न हुई है—उसके

हृदय का समस्त आदर-भाव एवं स्नेह-भाव अभिवादन के उन तीन शब्दों में समाया हुआ है।

और मधुसूदन ? यदि नर्स को आने में पाँच मिनट की देर भी हो जाती तो बेचैन हो उठता। खिड़की में से नज़र उठाकर दूर तक देखता, कहीं वह सड़क पर दीख रही है या नहीं और जब वे परिचित मधुर शब्द उसके कानों में पड़ जाते तब उसका चेहरा भी खिल उठता और उसे लगने लगता कि दुनिया ठीक चल रही है।

इसी तरह प्रसूति के समय, या ऑपरेशन करते समय, दवाओं का प्रिस्क्रिप्शन बनाते समय, हर वक्त उसे सुशीला के सान्निध्य से बड़ा सुख मिलता। उन दोनों के बीच का व्यवहार-बर्ताव अत्यन्त संयत और परिमार्जित था। वे एक दूसरे की ओर भी ज्यादा नहीं देखते थे, फिर भी मधुसूदन को लगता कि नर्स की मौजूदगी मात्र ही से उसके हृदय में अभूतपूर्व आर्द्रता एवं सूक्ष्म आनन्द का प्रादुर्भाव हो जाता है। दवाखाने में वह हाज़िर है, यही बात उसके सुख के लिये काफ़ी थी। उसकी उपस्थिति में उसे मुश्किल-से-मुश्किल ऑपरेशन करते समय, या सीरियस-से-सीरियस रोगी का इलाज करते समय अजीब स्फूर्ति और आत्म-विश्वास महसूस होता, और जब वह सफल हो जाता और बड़े स्नेह से नज़र उठाकर नर्स की तरफ़ देखता तो पाता कि उसकी आँखों में भी कौतुक और स्नेह का प्रतिभाव हँस रहा है और उसका दिल भर आता। कभी-कभी सोचता कि यदि सुशीला न रहे तो क्या दरअसल उसका कौशल कम हो जायगा ? इस संभावना से वह घबड़ा जाता और उसकी कल्पना तक करना छोड़ देता।

डा० मधुसूदन जानना चाहता था कि जो स्निग्धता और मुग्धता उसके हृदय पर छा रही है, उसकी प्रतिध्वनि क्या सुशीला के अगम्य और अज्ञात हृदय में भी गूँज रही है ? उसके मानस के अन्तरतम स्तर में कौन-सी भावनाएँ छिपकर बैठी हैं, जो एक बार भूलकर भी

ऊपरी सतह पर नहीं आ पातीं, ताकि वह उन्हें देख सके। यह सच है कि शीला के दिल में उसके लिये अत्यन्त आदर है, कौतुक है, लेकिन इसके आगे—?

उस रात्रि को, दवाखाने में, बसोड़न की जचकी के बाद, जब वह उसके कमरे में कॉफ़ी पीने के लिए गया था, तब उसने उसके दिल की थाह लेने की कोशिश की थी, पर उसने किस तरह वह बात मज़ाक में उड़ा दी थी! और फिर उसकी हिम्मत इस तरह की बात उठाने की नहीं हुई थी।

लेकिन उसने देखा कि दिन-ब-दिन सुशीला के चेहरे पर एक प्रकार की प्रसन्नता की दीप्ति चमक उठी है। उसके चेहरे पर विरक्ति और उदासीनता के जो भाव थे, वे तेज़ी से हट रहे हैं और अब वह कभी दिल खोलकर हँसती भी है। गालों पर सफ़ेदी और शुष्कता के स्थान पर लालिमा और स्निग्धता आ गई है। आँखों के शून्य एवं सुदूर भावों की जगह भावुकता एवं स्नेह-लता आ गई है। उसके सारे व्यक्तित्व में, ऐसा जान पड़ा कि नव जीवन और नवचैतन्य का संचार हो रहा है और उसका सात्विक सौन्दर्य दिन-प्रति-दिन निखर रहा है।

"इस सबका अर्थ क्या है ?"—डाक्टर मधुसूदन सोचने लगा, और यद्यपि उसके दिल में इसके कारण एक सुखद ऊर्मि लहराने लगती और मधुर कंपन सिहर उठता, तथापि वह निश्चय पूर्वक उस नतीजे पर नहीं पहुँच सकता था जिसके लिये उसका हृदय क्षुधार्त था, और इसी कारण उसके अन्तर में ऐसी अजीब उथल-पुथल, अस्वस्थता उठने लगी, जो उसने पहले कभी अनुभव नहीं की थी। उसे यही आश्चर्य होता था कि यह अनुभूति व्यथामय नहीं थी, उसमें मिठास थी, आर्द्रता थी, संगीत था।

अन्धकार में अपने बिस्तर पर करवटें लेते वह पूछ उठा—"यह क्या है ? यह मुझे क्या हो रहा है ?"

सुशीला ठीक दसवें दिन लौट आई। उसे देखते ही डॉक्टर मधुसूदन अवाक् रह गया।

"क्या तबीयत ख़राब हो गई थी?" उसने आस्था से पूछा।

"नहीं तो, बिल्कुल नहीं!" नर्स ने हँसकर जवाब दिया।

"नहीं कहने से क्या होगा? देखिये न, चेहरा कितना सूख गया है! जान पड़ता है, जैसे आप बीमार थीं। क्या बात है? जायदाद का कोई झगड़ा-वगड़ा...?"

"कुछ नहीं—वह सब ठीक-ठीक निपट गया और मैं बिलकुल बेफ़िक्र हो गई हूँ। रकम भी वसूल हो चुकी है। स्वास्थ्य भी अच्छा है—"

"फिर?"

"इतने लम्बे सफ़र की वजह से ऐसा दीखता होगा—"

"नहीं, सिर्फ़ उसी से इतना नहीं हो सकता।"

"नहीं डॉक्टर, कोई बात नहीं। आप खुद देखेंगे कि मैं फ़ौरन अच्छी हो जाऊँगी," और वह इस तरह मोहकता से हँस दी कि उसका उल्लास डाक्टर को भी छू गया।

सुशीला डाक्टर की अवस्था देखकर मन-ही-मन गद्गद् हो उठी। उसके सुख-दुख और स्वास्थ्य के बारे में इतनी आत्मीयता से कभी किसी ने पूछताछ नहीं की थी। हाँ, उसकी माँ है, जो उसकी इतनी चिन्ता करती है। वह भी विधवा है, सुशीला ही उसकी एक मात्र दुखी कन्या है—इस बुढ़ापे में एक मात्र सहारा

है, और वह भी उसी के रक्त-मांस से बनी है, सो उसका इस तरह ख़याल रखना आश्चर्य की बात नहीं, स्वाभाविक ही है।

किन्तु डॉक्टर ! माँ के अलावा वही एक व्यक्ति था जिसने दर्शाया था कि सुशीला, प्रेम-हीन, आनन्द-हीन विधवा सुशीला— हृदय-हीन मशीन नहीं, हृदयवान मानव है, जिसका अस्तित्व है। आज तक वह श्रम करके अपने आपको खपा रही थी, इसलिये कि माँ का और अपना पेट पालना ज़रूरी है। अपने जीवन को वह परिचर्या, पीड़ितों की सेवा, इत्यादि शुभ और बड़े-बड़े नामों से आभूषित करती थी, किन्तु जब वह दिन भर के थके-मांदे शरीर को अपनी एकान्त-शैय्या पर टिकाती तब उसे यही लगता कि ये सब सुन्दर शब्द आडम्बर मात्र हैं और उनकी ओट में वह प्रेयसी और माता बनने की अदम्य क्षुधा को दबोच रही है। ग़रीबी से उसे डर नहीं, परिश्रम से घबराहट नहीं, अपने अस्तित्व को मिटा देना भी उसके लिये कठिन नहीं। बस, मन में एक अतृप्त प्यास सदा दुबकी हुई बैठी रहती, एक शाश्वत, दुर्जेय चाह बनी रहती कि उसे ऐसा स्थान मिले, जहाँ वह अपना स्नेह और वात्सल्य दे सके। वह कुछ नहीं लेना चाहती थी, माँगती नहीं थी, केवल देना ही देना चाहती थी। पर यह लेनेवाला भी संसार में उसके सामने नहीं आया था। उसके हृदय में अपार स्निग्धता थी, रस-द्रव्य था जो किसी प्रदीप के प्रज्ज्वलन में अपने आप को जला दे, किन्तु वह प्रदीप भी तो हो !

किन्तु स्नेह का ऐसा स्थान उसे कहीं नहीं मिला था। अपने व्यवसाय के सिलसिले में उसका सम्पर्क कई पुरुषों से हुआ था— कई उसके सहकारी डॉक्टर थे, कई रोगी थे, किसी ने उसके साथ बर्ताव करते समय मर्यादा नहीं छोड़ी थी, किन्तु इससे क्या ? उसके हृदय के पास पहुँचने की किसी पुरुष ने कोशिश नहीं की थी। कई नर्सों के विवाह होते हुए उसने देखे-सुने थे, किन्तु वह

अपने सूने जीवन के पथ पर अकेली ही चली जा रही है और उस पथ को आलोकित करनेवाला प्रकाश उसे कहीं नहीं मिला।

इसका कारण? कारण शायद यही कि सौन्दर्य की लौकिक कल्पना के अनुसार वह सुन्दर नहीं थी। रंग-रूप साधारण, सतत दुःख के कारण चेहरे में उदासीनता और गंभीरता, उम्र भी बढ़ती हुई, अब चौंतीस-पैंतीस पर जा पहुँची है। ऊपरी तौर पर देखने में ऐसी कोई चीज़ नहीं जो किसी पुरुष का मन आकर्षित कर सके, और इसके लिये अपने आप उसने कभी कोशिश भी नहीं की।

और दुर्भाग्य से, आजकल की आडम्बर-युक्त सभ्यता के ज़माने में, नर्स सुशीला के पास जो अमूल्य निधि थी, उसे देखने की प्रवृत्ति ही कहाँ दिखाई देती है? वह थी—उसकी आत्मा का सौन्दर्य, उसके अन्तःकरण की विशालता। यह संपत्ति ऐसी नहीं जिसका बाज़ार में विज्ञापन किया जा सके, और यह सौन्दर्य भी ऐसा नहीं जिसे हर कोई देख सके। उसके लिये हृदय की उतनी ही सुन्दरता और संस्कारिता की आवश्यकता है और यह आजकल की दुनिया में दुर्लभ है, अत्यन्त दुर्लभ!

प्रथम भेंट में ही डॉ० मधुसूदन के प्रति सुशीला के मन में आदर और सद्भावना जाग्रत हो गई थी। किन्तु वह बात वहीं ख़तम हो जाती, यदि उसका वह पत्र न प्राप्त हुआ होता।

डॉक्टर ने अपने पत्र में आत्मीयता की जो भावनाएँ व्यक्त की थीं, उससे सुशीला के हृदय में हलचल तो मच ही गई थी। बम्बई के निरानन्द जीवन से तो उस मध्य प्रान्त के ज़िले के स्थान का जीवन अच्छा, जहाँ कम-से-कम एक आदमी तो है, जो उसके व्यक्तित्व की क़द्र करता है और उसके सहयोग का स्वागत! ज़िन्दगी की जलती हुई मरुभूमि में इतनी हरियाली क्या कम है?

और ज्यों ज्यों उन दोनों का सम्पर्क बढ़ता गया, त्यों त्यों सुशीला ने अनुभव किया, उसकी उदासीनता दूर होती जा रही

है और जीवन में रस आ रहा है। अपनी माँ के साथ उसने एक ब्लॉक ले लिया था, जिसके दूसरे हिस्से में ऐंग्लो-वर्नाक्युलर गर्ल्स मिडिल स्कूल की प्रधानाध्यापिका कुमारी पद्मावती चंद्रा रहती थी। माँ अक्सर अपना वक्त घर-गिरस्ती तथा भजन पूजा में बिता देती थी, किन्तु सुशीला का अधिकांश वक्त, दवाखाने तथा मैटर्निटी होम में बीतता था। कई बार तो सीरियस केस की वजह से रात में भी घर नहीं सो सकी है। चूँकि उसे पड़ोस अच्छा मिला है, इसलिये वह निश्चिंत-सी थी। कुमारी चन्द्रा अपनी माँ, दो भाई और एक बहन के साथ रहती थी। एक भाई म्युनिसिपल कमिटी में क्लर्क हो गया था और दूसरा अभी हाई स्कूल में पढ़ता था। बहन उसी स्कूल में पढ़ती थी। पिता नहीं थे। घर का खर्च दोनों भाई-बहन की कमाई के चल जाता था। चन्द्रा परिवार के सभी लोग स्वभाव से भले और मिलनसार थे। पद्मावती सुशीला से उम्र में दस-ग्यारह साल छोटी थी, फिर भी दोनों की अच्छी पटती थी। दोनों एक बात में समानशील थीं कि दोनों का जीवन एकाकी था। एक विधवा थी, और दूसरी अविवाहिता। दोनों ने ही प्रेम नाम की वस्तु जीवन में जानी ही नहीं। सुशीला और पद्मा में शीघ्र ही आत्मीयता बढ़ गई।

इन सब कारणों से सुशीला को इस नवीन स्थान में आने में तनिक भी पछतावा नहीं हुआ, बल्कि खुशी ही हुई। पहली बार उसे लगा कि जीवन जीने लायक है, भार रूप नहीं।

डॉ० मधुसूदन का उसके प्रति वर्ताव बहुत अच्छा था। दिन-प्रति-दिन उन दोनों का परस्पर-भाव बढ़ता चला गया। दोनों एक दूसरे को खूब समझते थे। आपस में बहस करते या उन दोनों का मतभेद होते किसी ने नहीं सुना था। एक ध्येय से दो व्यक्तियों का इस तरह सम-रस हो जाना निस्संदेह असम्भव न हो, पर आश्चर्य की बात तो अवश्य थी। आजकल की दुनिया में यह बात कम पाई

जाती है।

डॉ० मधुसूदन!

सुशीला सोचती, आज डॉक्टर की माँ जिन्दा रहती तो अपने मातृ-वत्सल पुत्र का वैभव देखकर कितनी खुश होती! आज सारे ज़िले में उसका बोलबाला है—डॉक्टरी-कौशल के कारण तो है ही, पर इससे भी बढ़कर उसकी मानवता के कारण। लोगों पर उसके व्यक्तित्व का असर लोह-चुम्बक की तरह आकर्षक होता। जहाँ वह जाता, आनन्द और आशा का संचार करता, लोगों के पस्त दिलों में हिम्मत और नव-जीवन फूँकता। उसके प्रतिस्पर्धी ईर्षालु दो-एक डॉक्टरों तथा कुछ धनिकों के अलावा सारा नगर उसे सर-आँखों रखता था।

ख़ैर, औरों के लिये वह जो कुछ हो, उसके लिये तो वह देव-दूत-सा ही अवतरित हुआ था—हाँ, देव-दूत सा! इसमें ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं।

उसके आदर्शवाद तथा स्नेहमय, सहृदय अन्तःकरण ने तो उसके दिल पर मोहिनी डाल ही दी थी, किन्तु इससे भी अधिक जिस बात ने उसे अभिभूत कर डाला था, वह थी डॉक्टर का उसके प्रति व्यक्तिगत बर्ताव। उसकी एक-एक बात से यह स्पष्ट होता था कि वह सुशीला के व्यक्तित्व का आदर करता है, उसकी रुचि-अरुचि का ख़याल रखता है और जितना भी बन सके, सुख पहुँचाने का प्रयत्न करता रहता है।

शीला का हृदय कृतज्ञता से शराबोर था।

किन्तु वह क्या केवल कृतज्ञ-भाव ही था?

क्यों उसकी एक ही प्रेमल दृष्टि शीला के हृदय को हरा-भरा कर देती? क्यों उसकी मधुर मुस्कराहट, जिसके कारण उसके शुभ्र-सुन्दर दाँत मोती की लड़ियों की तरह चमक उठते, उसके मन को मोह लेती? क्यों उसका अल्प-सा, अहेतुक स्पर्श भी, जो

थर्मामीटर या दवा का गिलास देते समय या इसी तरह और कभी हो जाता था, उसके शरीर में कँपकँपी भर देता? और क्यों उसका सान्निध्य, भले ही वह मूक रहे, उसकी छोटी-सी दुनिया में आनंद और उल्लास की ऊर्मियाँ लहरा देता?

क्यों? क्यों? क्यों—?

रात में जब वह बिस्तर पर लेटती तो दिन भर की वे सब बातें और क्षण याद आते जिसका केन्द्र-विन्दु था डॉक्टर! उसका रोगी को देखना, उसका हँसना, उसका मुस्कराना, स्नेह-दृष्टि से देखना, उसका चलना, अपने बालों पर हाथ फेरना, उसके हर कार्य-व्यापार में उसे सौन्दर्य दीखता। उसका ऊँचा-पूरा भरा हुआ शरीर जो शायद, मध्य प्रान्त के पहाड़ी इलाके की देन थी, लाल-गोरा चेहरा, चौड़ी-छाती, बड़े-बड़े भुज-दण्ड, जो उसकी कार्य-शक्ति के परिचायक थे, लम्बे बाल, बड़ी भावुक आँखें, और इन सब पर खुलकर दीखने-वाली सादी शुभ्र पोशाक! दरअसल वह शक्ति, सेवा और आशा का महासागर था।

वह रात को नौ बजे घर जाने को निकलती तो मन में कुछ अवस्वस्थता पाती कि डॉ० उसे अब बारह घण्टे तक नहीं दिखाई देगा। सुबह दवाखाने आती तो बड़े उल्लास के साथ कि अब उसकी आँखों को डॉक्टर के दर्शन होंगे। अस्पताल पहुँचते ही उसे यदि डॉक्टर की मोटर न दीखती तो वह कुछ देर के लिए निराश तो हो ही जाती, और ज्यों ही दूर से उसकी आती हुई मोटर का हार्न सुनती तो उसका हृदय भी आनन्द से झंकृत हो उठता!

यही कारण है जो उन दस दिनों की गैरहाज़िरी में, जब वह कर्नाटक गई थी, वह इतनी बेचैन और अस्वस्थ रही थी, जिसका परिणाम उसके चेहरे और शरीर पर अंकित हो गया था, क्योंकि उस अवधि में उसे डॉक्टर नहीं दीख सका था।

इतना सब होने के बाद भी सुशीला ने अपने अन्तर के भाव कभी भी ऊपरी सतह पर नहीं आने दिये, मानो वह जान-बूझकर इसी कोशिश में थी कि जिसके व्यक्तित्व के कारण उसके हृदय में यह उथल-पुथल मची हुई है, उसे उसका तनिक भी पता न चले। उसे न चले और किसी को भी न चले—दुनिया को न चले। इस तरह अपना गोप्य तो नारी ही रख सकती है।

फिर भी इतनी मधुरिमा और नव चैतन्य पाने के बाद भी वह मन-ही-मन व्याकुल रहती—बेचैन रहती। उसकी भावनाएँ कौन सा रूप ले रही हैं, इसकी प्रथम आभा तो उसे तब मिली, जब वह कर्नाटक गई थी और इस जानकारी से वह बहुत घबड़ाई, क्योंकि उसकी परिपूर्ति असंभव है, अवांछनीय है, ऐसी उसकी धारणा थी!

कहाँ वह अधेड़-सी प्रौढ़ा, जिसमें न रूप है, न गुण, और कहाँ यौवन के उद्यान में खिलने-फूलने वाला सर्व-गुण संपन्न डॉक्टर! उम्र में भी सात-आठ वर्ष का फ़र्क है और सौन्दर्य और गुणों में तो ज़मीन-आसमान का।

छि:, असंभव, बिलकुल असम्भव, एकदम असंभव!

ऐसा विचार मन में लाना भी मूर्खता है। डॉक्टर यदि उसके साथ सद्व्यवहार करता है तो उसकी सभ्यता है, सहृदयता है—कोई भी सुसंस्कृत व्यक्ति अपने सहयोगी के साथ इसी प्रकार का आचरण करेगा। इसमें इससे ज्यादा कुछ देखना ग़लत है, पागलपन है।

यह सब सोचकर सुशीला व्यथित हो जाती। किन्तु यह व्यथा निरी दुखदायी ही नहीं थी, उसमें एक अजीब-सी माधुरी थी, जो उसने पहले कभी नहीं अनुभव की थी।

नर्स सुशीला को लगा कि उसका मन और हृदय, आत्मा और अन्तःकरण, उसका समूचा व्यक्तित्व ही विकसित हो रहा है।

अजीब है यह प्रक्रिया ! मानो किसी ने जादू की लकड़ी फेर कर उसके अन्तर्जीवन को ही संपूर्णतया परिवर्तित कर दिया है। इसका पर्यवसान कुछ भी हो—और वह क्या होगा इसकी शंका भी नहीं—पर यह सच है कि आज की सुशीला वह पुरानी सुशीला नहीं रही है।

—:०:—

आज तार आया है कि डॉक्टर मधुसूदन के पिता की तबीयत ख़राब है, पहली गाड़ी से बुलाया है।

डॉक्टर दवाख़ाने में ही था और नर्स मैटर्निटी होम में। तार की ख़बर मिलते ही वह भागी-भागी आई। डॉक्टर का चिन्ता-ग्रस्त चेहरा देखकर सहम गई, बोली—"आप उन्हें यहीं ले आइये, इलाज अच्छा होगा।"

"इलाज की बात तो ठीक है, पर यूं भी मैं उनसे क़रीब पाँच-छः बार कह चुका हूँ कि वे अब गाँव छोड़ यहाँ मेरे पास आकर रहें, लेकिन हर बार उन्होंने दृढ़ता से यही कहा कि नहीं मधु, जिस जगह तुम्हारी माँ के साथ मेरी ज़िन्दगी के सबसे सुखी क्षण बीते हैं, वह जगह मैं नहीं छोड़ना चाहता। वे बूढ़े हैं, अकेले हैं, उनकी सेवा करने वाला वहाँ अपना कोई नहीं, फिर भी वे गाँव नहीं छोड़ना चाहते। कहते हैं कि पूर्वजों की इसी ज़मीन में राख बनें, तभी उन्हें शान्ति मिलेगी। मैं लाचार हो गया।"

"हूँ—बड़ी मुश्किल बात है।" सुशीला ने कहा, "उनकी भावनाओं की अवहेलना भी नहीं की जा सकती। मैं साथ चलूँ ?"

"चल सकतीं तो बड़ा अच्छा होता, लेकिन फिर यहाँ कौन सँभालेगा ? मैटर्निटी के दो 'केस' तो आज सुबह ही दाख़िल हुए हैं।"

"हाँ, ठीक बात है, फिर आप डॉक्टर वर्मा को क्यों नहीं ले जाते ? कम-बेशी हालत हो तो एक से दो भले।"

सुशीला जानती थी कि डॉक्टर भावनाशील आदमी है—माता और पिता का अनन्य भक्त! वृद्ध पिता का इलाज करते समय उनका कुशल हाथ, जो कठिन-से-कठिन 'केस' में भी नहीं गड़बड़ाया, भावनाओं के कारण डाँवाँडोल हो सकता है, यही सोचकर उसने यह सलाह दी थी। हालांकि डॉ० वर्मा मधुसूदन के प्रतिस्पर्धी थे और उसकी लोक-प्रियता तथा यश देखकर उससे जलते थे, फिर भी डॉक्टरी में उसके बाद उन्हीं का नम्बर आता था। अपने दिल में मधुसूदन तो उन्हें स्नेह और आदर की दृष्टि से ही देखता।

मधुसूदन और डॉ० वर्मा पहली गाड़ी से ही निकले, क्योंकि गाँव को जाने के लिए मोटर का पक्का रास्ता नहीं था। साथ में दवाओं का बक्स था। नर्स उन्हें स्टेशन तक पहुँचा आई और शीघ्र से शीघ्र तबीयत का हाल सूचित करने का आग्रह करके दवाखाने लौट गई।

दूसरे दिन सुबह अकस्मात् डॉ० वर्मा ने स्वयं आकर इत्तला दी कि श्रीपुर पहुँचने के तीन घण्टे बाद ही डॉ० मधुसूदन के पिता का देहान्त हो गया। रोग? कोई ख़ास नहीं। जिस तरह पका हुआ फल अपने आप टूटकर धीरे से गिर पड़ता है, उसी तरह उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया। बड़ी शान्तिमय मृत्यु थी। पुत्र को देख कर वे बड़े प्रसन्न हुए थे; बोले, मधुसूदन, तुमने अपनी माँ की सारी इच्छा पूरी की। अब यह समाचार देने के लिए उसके पास मुझे स्वयं जाने दो। तुम दुखी मत होना बेटा, क्योंकि मुझे अब मरने में सन्तोष है। मेरा काम हो चुका। अब तुम अवसर देखकर शादी कर लेना और लोगों की सेवा करते रहना। यह ज़मीन कभी हाथ से नहीं जाने देना, क्योंकि तुम्हारी माँ और मैं दोनों ही इसे प्रेम करते हैं। मरने के बाद भी हमारी आत्माएँ यहीं विचरण करती रहेंगी। बस मेरी आख़िरी इच्छा यही है कि मेरा अन्तिम

अग्नि-संस्कार उसी स्थान पर हो, जहाँ तुम्हारी माँ का हुआ था। डॉ० वर्मा ने कहा कि मृत्यु के बाद मेरा ठहरना बेकार था, इसलिए मैं रात की गाड़ी से ही निकल पड़ा। डॉ० मधुसूदन बाकी इन्तज़ाम करने के लिए दो-एक दिन और वहीं रहेंगे।

सुशीला का हृदय भारी हो गया—डॉक्टर की वेदना के ख़याल से, पर यह सब सुनकर इस भारीपन में भी उसे डॉक्टर के माँ-बाप के आपसी प्रेम को देखकर कौतुक हुआ, कुछ मीठी ईर्ष्या भी। आख़िर इस तरह का उत्कट प्रेम बहुत कम दम्पतियों को नसीब होता है। आश्चर्य नहीं जो पुरानी पीढ़ी के इन दो अनुरक्त पति-पत्नी की सन्तान इतनी अच्छी, इतनी सुन्दर हो! दोनों ने उसे विरासत में इतना अच्छा स्वभाव और हृदय जो दिया था!

—:०:—

बंगाल-नागपुर रेलवे की छोटी लाइन की पैसेंजर गाड़ी। रात्रि के घनघोर अंधकार में सतपुड़ा पर्वत के घने जंगल और घाटियों और नदी-नालों को एक-एक करके वह मन्थर गति से पार करती जा रही है। बाहर रिमझिम पानी बरस रहा है। गाड़ी में गैस की धुँधली बत्तियाँ हैं, पर बाहर घना अँधेरा। कुछ भी सूझता नहीं।

उस गाड़ी के इन्टर क्लास के डिब्बे में, अपना बिस्तर बिछाकर मधुसूदन बैठा हुआ है। सिर को दोनों हथेलियों के बीच थामे, कुहनियों को समेटे हुए, घुटनों से टेके, वह अंधकार में घूर रहा है। जिस उत्कटता से वह घूर रहा है, उससे यही जान पड़ता है कि इसमें उसे शान्ति मिल रही है। और ऐसा क्यों न हो ! आज उसके दिल में विषण्णता और सूनापन है, उसकी प्रति-क्रिया बाहर के अँधेरे में बिलकुल ठीक उतर आई है।

माता के प्यार को वह बचपन ही में खो बैठा था, किन्तु उसकी मंगल स्मृति जीवन भर उसे आशीर्वाद की तरह प्रोत्साहन देती रही और उसका पथ-प्रदर्शन करती रही। इस तरह उसके लिए वह मरकर भी सबसे बड़ी जीवन्त सत्य हो गई थी।

और आज उसने अपने बापू को भी खो दिया ! दुर्भाग्य में भी सौभाग्य इतना ही था कि उनके अन्तिम चरणों में वह उनके पास पहुँच सका। उनकी मृत्यु भी कितनी शांत और कष्टहीन थी, मानो वे चुपचाप नींद लेने चले गये हैं।

मधुसूदन ने खुद अपनी आँखों से देखा कि जिनका जीवन

साधु, शुचि एवं सेवामय होता है, उनका मरण भी उतना ही शान्त, सौम्य एवं मंगलमय होता है।

एक बात का रंज उसे सदा रहा है कि प्रैक्टिस शुरू करने के बाद उसके बापू, हज़ार कहने पर भी, उसके पास नहीं रह सके, ताकि बुढ़ापे में वह उनकी कुछ सेवा कर पाता। हर बार उन्होंने यही कहा कि वे अपनी ज़मीन और पुराना घर नहीं छोड़ना चाहते और जब उन्हें मधु की ज़रूरत होगी तब वे उसे ज़रूर बुला लेंगे। उन्होंने बड़े स्नेह से कहा, 'बेटा इस शरीर की सेवा का मोह इतना क्यों ? यह तो एक दिन मिट्टी में मिल जाने को है। कृतार्थता इसी में है कि अपनी माँ की इच्छानुसार डॉक्टरी चलाओ और दुःखी एवं पीड़ित नर-नारियों की मनोयोग से सेवा करो। इसी में मेरी भी सेवा हो जायगी।' इस पर मधुसूदन कुछ न बोल सका। फिर भी उसे यही सन्तोष हुआ था कि उसके पिता का वरदहस्त सदैव उसकी पीठ पर रहेगा। उनके पास पहुँचने के लिये उसे केवल ४०-४५ मील का अन्तर पार करना ज़रूरी है—बस !

किन्तु आज वह अन्तर अनन्त हो गया है। अब वह कितना ही भटके, कितना ही प्रयत्न करे, इस लोक में तो उसे बापू के दर्शन नहीं होंगे। परलोक की बात भगवान जाने।

उसे अपने परिवार की पुरानी पीढ़ियों से बाँधनेवाली कड़ी आज टूट गई। उसके पुरखों ने मुग़ल, गोंड और मरहठे राजाओं के युद्धों में भाग लिया था और अपनी भूमि पर आये हुए संकट के निवारण के लिये हमेशा तलवार हाथ में ली थी। उनकी कितनी ही कथाएँ उसने बापू के मुँह से सुनी थीं, किन्तु आज वह अतीत काल दरअसल अतीत हो गया है और उसके पूर्वजों की परम्परा चलाने का कार्य उसके कंधों पर आ पड़ा है।

बापू ! बापू !!

इतने में किसी छोटे स्टेशन पर गाड़ी ठहरी और डिब्बा खोल-

कर कोई अन्दर घुस आया । डॉक्टर ने सुना—"आप हैं डॉक्टर साहब ? गुडमार्निङ्ग, नहीं गुडइवनिंग !"

डॉक्टर ने देखा, एक सिक्ख टिकट कलेक्टर है, जिसकी खाक़ी पोशाक पर चाँदी जैसे सफ़ेद बटन चमक रहे हैं और कालर पर एक बिल्ला लगा हुआ है। हाथ में वही टिकट की कैंची है।

डॉक्टर ने उसकी तरफ़ देखकर शुष्कता से मुस्करा दिया। उसका चेहरा देखते ही टिकट कलेक्टर ने कहा—

"ओह, क्या आपकी तबीयत ख़राब है जी ?"

"जी नहीं।"

"फिर ? कहाँ से तशरीफ़ ला रहे हैं ?"

"गाँव से—पिताजी की मृत्यु हो गई है।"

"ओह हो हो, वेरी सॉरी—बड़े अफ़सोस की बात है ! क्या उमर थी जी ?"

"उनसठ साल।"

"तब तो ठीक है। मरने की उमर तो जैसे हो गई थी। इण्डिया में तो औसत उमर तेईस साल की है। इस हिसाब से तो उनकी उमर गोया डबल हो गई—ऐंजी ?"

डॉक्टर कुछ न बोला; लेकिन टिक्ट कलेक्टर साहब बोलते ही रहे।

"आप रंज न मनाइये, डॉक्टर साहब ! 'फ़ादर' हैं तो 'डेथ' तो होनी ही थी जी। मेरे भी फ़ादर थे। तो बस, तीन साल पहले की बात है कि एक दिन गुजरांवाला से तार आया कि बस, डेथ हो गई ! मैंने कहा कि ऐसे कैसे डेथ हो जायगी, लेकिन फिर तार पढ़ा तो वही मतलब निकला। एंग्लो-इण्डियन स्टेशन मास्टर से पढ़वाया तो उन्होंने भी कहा कि वही मतलब है। भला बताइये, मैं क्या इतनी ग़लती कर सकता हूँ—मिडिल हूँ, मिडिल फ़ेल—ऐंजी ?"

"जी हाँ"—डॉक्टर ने अनसुना-सा कहा।

"फिर भी रंज तो होता ही है—लाज़मी है। आख़िर फ़ादर ही तो ठहर-ऐंजी? अपना टिकट ज़रा दीजिये—काट दूँ। ये तो रसम है, रसम! आप जैसे भले आदमी भला 'विदाउट' जाते हैं?

डॉक्टर ने बगैर कुछ कहे टिकट निकालकर बढ़ा दिया।

"यहाँ तकलीफ़ हो तो आपको सिकण्ड किलास में बैठा दूँ, ऐंजी?"

"जी नहीं, यहाँ मजे में हूँ, मेहरबानी!"

फिर दोनों चुप रहे। कुछ देर ठहरकर सरदार जी बोले—

"डॉक्टर साहब, ज़रा 'चेस्ट' में दर्द रहता है मेरे। देखकर कोई दवा दे दें तो बड़ी मेहरबानी होगी—ऐंजी?"

उस हालत में भी टिकट कलेक्टर ने अपनी जाँच करवा ली और पॉकेट से नोट बुक निकालकर दवा भी लिखवा ली और फिर एक स्टेशन पर उतरकर सरदारजी कहने लगे—

"अगला स्टेशन है आपका, डॉक्टर साहब! आप आफ़सोस क़तई मत कीजिये। ये रंज है सो निकल जाने को है-ऐंजी? मेरे लायक़ कोई ख़िदमत हो तो ज़रूर इत्तला दें—गुड नाइट!"

और वह भारी-भरकम टिकट कलेक्टर उतरकर अंधकार में विलीन हो गया। डॉक्टर को इस मनःस्थिति में भी उसकी बात-चीत से हँसी आये बिना न रही। अजीब शख्स है!

जब गाड़ी स्टेशन पर पहुँच रही थी तो डॉ० मधुसूदन ने देखा कि घनघोर वर्षा हो रही है। पास में छाता भी नहीं है। ख़ैर जो हो, उतरना तो पड़ेगा ही। बिस्तर बाँधकर डिब्बे का दरवाज़ा खोला और बाहर झाँका तो देखा—क्या आश्चर्य!

सिर पर छाता ताने तथा एक हाथ में एक और छाता लिये नर्स सुशीला खड़ी है!

"कौन, सुशीलाबाई?"

"जी हाँ !"

"इतने पानी में ? कैसे पता चला कि मैं इस गाड़ी से आ रहा हूँ ?"

"मैं तीन दिन से दोनों गाड़ियाँ 'अटेण्ड' कर रही हूँ ।"

"ओह --What a Pleasant surprise !"

कुली के सिर पर बिस्तर रखवा दोनों ताँगे में आकर बैठे । मोटर घर पर ही थी, क्योंकि डाक्टर खुद उसे चलाता था । दोनों ही काफ़ी भीग गये थे--सुशीला ज्यादा भीगी थी ।

"इतनी तकलीफ़ क्यों की, शीलाबाई ?"

"मैं नर्स हूँ—पीड़ितों और व्यथितों की सेवा करना मेरा धर्म है । आपके हृदय में क्या बीत रही होगी, यह जानती हूँ ।"

डाक्टर ने अँधेरे में ही हाथ बढ़ा कर सुशीला के हाथ पर रख दिया । नर्स ने दोनों हाथों के बीच उसे अत्यन्त मृदुता से दबा लिया ।

कितना स्नेहमय और ममता-भरा स्पर्श था वह ! मानो उस स्पर्श के द्वारा सुशीला ने अपनी सारी भावनाएँ मधुसूदन के हृदय तक पहुँचा दीं ।

दरअसल कभी-कभी स्पर्श शब्दों से भी ज्यादा बोलता है ।

"आपको घर छोड़ दूँ ? ताँगा उसी तरफ़ से—"

"जी नहीं, आपको पहले पहुँचा दूँ, फिर मैं पैदल ही दवाखाने चली आऊँगी । उस मास्टर की औरत को एक बार देखना होगा ।"

"पैदल क्यों, मैं खुद मोटर से पहुँचा दूँगा ।"

"आप ? ऐसी हालत में ?"

"क्यों, मुझे क्या हो गया ? बापू की मृत्यु से मेरे अन्दर जो भी दुःख हो, बाहरी बर्ताव-व्यवहार में कोई फ़र्क नहीं होगा, शीलाबाई ! मेरे कर्त्तव्य-पालन में जरा भी अवहेलना नहीं होगी ! मुसीबतों में आसानी से डिगने वाला मैं नहीं हूँ ।"

'कोई नौकर है ?" डॉ० के घर पहुँचते ही सुशीला ने कहा -

"नहीं, झाड़-पोंछकर शाम को ही चला गया होगा। एक चाभी उसके पास रहती है, एक मेरे पास। मेरे आने का ठिकाना तो था नहीं।"

"पहले आप कपड़े बदल लीजिये। फिर मैं आपको स्पिरिट अमोनिया ऐरोमैटिक की एक खूराक पिलाकर बिस्तर पर सुला दूँ और चली जाऊँ।"

"इसकी ज़रूरत नहीं है। मैं खुद कर—"

"मैं नर्स हूँ, यह भूल गये! कब किस रोगी को किस प्रकार की नर्सिंग की ज़रूरत होती है, सो खूब जानती हूँ!"

"तो मैं रोगी हूँ ?"

"हाँ, शरीर से नहीं, हृदय से।"

"सो कैसे ?"

"इतनी भावुकता रोग नहीं तो क्या है ? पुरुषों को वह शोभा नहीं देती। खैर बहस मत कीजिये, देर हो रही है। कपड़े कहाँ हैं ?"

"मैं लाता हूँ।"

"आपको मालूम भी है कि इस हवा में कौन-से कपड़े पहनने चाहिएँ ?"

आज मधुसूदन को सुशीला का यह स्वरूप देखकर आश्चर्य हो रहा था। शांत, संकोची नर्स आज इस क़दर अधिकार-वृत्ति कैसे बतलाने लगी ? फिर भी मधुसूदन को उसके इस व्यवहार से अत्यन्त सूक्ष्म और गूढ़ सुख प्राप्त हो रहा था।

"मैं कपड़े नहीं बदलता —" वह बालक की तरह हठ करता हुआ बोल उठा।

"क्यों ? यह क्या बचपन है ?"

'तुम्हारे गीले रहते, मैं कपड़े बदल लूँ ?"

सुशीला ने देखा, मधुसूदन ने पहली बार 'आप' का औपचारिक सर्वनाम छोड़ कर 'तुम' कहा। वह मन-ही-मन प्रसन्न हुई। उसे और एक बात से सुख मिला कि डॉक्टर उसकी सेहत और आराम की इतनी फ़िक्र करता है! पर मन के सारे भाव दबाकर वह हँसकर बोली--

"आपके पास साड़ी है? लाइये, अभी बदल लूँ।"

"साड़ी तो नहीं है--" उसने किंचित् निराश होकर कहा।

"तो क्या बदलूँ--ख़ाक?"

"एक बात हो सकती है। मेरी धोती पहन लीजिए और ऊपर से ऊनी ओवर कोट डाट लीजिए। उसके भीतर सब कुछ छिप जायगा।"

"और इस रूप में कोई देख ले तो क्या होगा?" उसने मुस्कराकर कहा।

"कुछ भी हो, पर मैं इस तरह तुमको गीले नहीं रहने दूँगा, वरना मैं भी कपड़े नहीं बदलता--" उसने दृढ़ता से कहा।

"अच्छा भाई, पहने लेती हूँ। कोई बच्चों जैसा हठ करे तो क्या किया जाय!"

सुशीला बगल के कमरे में चली गई और वहाँ से एक बड़ा टर्किश बाथ तौलिया लाकर बोली,--"पहले इससे बदन रगड़कर सुखा लो और उसी को लपेट कर खड़े रहो--मैं कपड़े लाती हूँ।"

डॉक्टर ने भी देखा, 'लीजिए' और 'रहिये' की जगह 'लो' और 'रहो' का प्रयोग हो रहा है! मन-ही-मन मुस्कराया।

डॉक्टर आज्ञाकारी बालक की तरह सुशीला का कहना मानने लगा। नर्स डॉक्टर से चाभियाँ लेकर और सन्दूकों को ढूँढ-ढाँढ कर, पूरी आस्तीन का शर्ट, पैजामा, ऊनी स्वेटर, मोजे तथा मफ़लर निकाल लाई और उन्हें एक-एक कर पहना दिया। फिर कँघी, ऐना लाकर कहा--"अब ज़रा सूरत ठीक कर लीजिये--"

"लीजिये !" डॉक्टर ने चिढ़कर कहा।

"अच्छा भाई, 'लो' ! तुम्हारे घर में आज अकेले में यही कहे देती हूँ !"

जब सुशीला ने भी धोती और ओवर कोट पहन लिया तो मधुसूदन बोला—"यह पोशाक तो तुम्हें बड़ी भली लगती है !"

"सिर्फ पोशाक ही न ?" और दूसरे ही क्षण यह क्या पूछ बैठी, यह देखकर संकोचित हो उठी। फ़ौरन बात बदलने के लिये बोली—"अब ज़रा आप लेट रहिये भला !"

"फिर 'आप' कहा।"

"क्या करूँ, पुरानी आदत नहीं जाती--ख़ैर, जाओ लेट रहो।"

"और तुम ?"

"मैं फिर जाने की तैयारी करूँगी।"

"नहीं, इतनी जल्दी मत जाओ शीला !"

"अच्छा, नहीं, जाती।"

शीला ने मधुसूदन को बिस्तर पर लिटा दिया और ऊपर से छाती तक कंबल ओढ़ा दिया। सुशीला पास ही कुर्सी खींचकर बैठ गई।

"इतनी दूर क्यों बैठी हो शीला ? आज तुम्हारे सान्निध्य की बड़ी जरूरत है।"

सुशीला के मन में आया कि पूछे, आज ही या हमेशा ?

वह कुछ न बोली। सिर्फ़ चुपचाप आकर मधुसूदन के सिरहाने बैठ गई। दोनों चुप।

बाहर अभी भी ज़ोरों से वर्षा हो रही थी। कमरे में 'केरोसिन' का लैम्प दूर कोने में मन्द प्रकाश दे रहा था। कमरे में स्तब्धता थी। बाहर सर्दी थी, पर अन्दर काफ़ी आरामदेह गरमी थी। सूखे और ऊनी कपड़े पहनने की वजह से दोनों के शरीरों में काफ़ी उष्णता

आ गई थी। दोनों की भावनाएँ इस समय मृदु और तरल थीं। दिवस के प्रकाश में मनुष्य ज्यादा तर्कशील और कर्त्तव्य-दक्ष होता है। रात्रि के अन्धकार में वही अधिक भावनामय एवं स्नेहशील हो जाता है। आकाश को अपने नक्षत्रों का भण्डार खोलने का साहस रात्रि में ही होता है। मानव को भी अपना हृदय-वैभव व्यक्त करने के लिए निशा के आवरण की ही जरूरत होती है।

डॉ० मधुसूदन सुशीला के निकट अत्यन्त सान्त्वना और सुख अनुभव कर रहा था। माता-पिता को खोकर आज उसका अपना दुनिया में कोई नहीं बचा था। भावुक होने के कारण वह किसी के स्नेह की छत्र-छाया पाये बिना जीवन में पनप भी नहीं सकता था। शीला के हृदय की धनिकता एवं सौन्दर्य ने उसे अभिभूत कर डाला था। वह यदि अपना प्रेम दे सके तो डॉक्टर स्वतः को धन्य समझेगा। उसके सामने यह प्रश्न नहीं था कि सुशीला उससे उमर में ७-८ वर्ष बड़ी है, देखने में साधारण है और उसका यौवन, भारत वर्ष की आयु-मर्यादा देखते हुए ढल रहा है। उसने शीला के शरीर की तरफ़ कभी नहीं देखा। उसके हृदय को देखा तो उसे लगा कि वह उसके, यानी मधुसूदन के हृदय से कितना अधिक स्नेहमय, विशाल एवं उदार है। दिन-ब-दिन उसे यह ख़याल हो रहा था कि वह किसी प्रेमल व्यक्ति की देख-भाल और सार-संभाल के बिना जीवित नहीं रह सकता और ऐसा व्यक्ति, सुशीला के सिवा और कोई नजर नहीं आ रहा था। सुशीला ने उसके व्यवसाय में सहयोग देकर तो अपनी योग्यता साबित कर ही दी थी। आज बात थी जीवन में सहयोग देने की—और उसकी भिक्षा माँगने के लिये मधुसूदन सदा उत्सुक रहता था; किन्तु खुली ज़बान से अभी तक यह कहने की उसकी हिम्मत नहीं होती थी।

और सुशीला? ज़िन्दगी भर पुरुष के स्नेह से वंचित रहकर उसका हृदय आतप्त ज़मीन की तरह शुष्क और पिपासित था।

स्नेह की वर्षा का अल्प-सा जल भी उसे हरा-भरा कर देने के लिये काफ़ी था। और आज मधुसूदन की आत्मीयता देखकर तो उसका दिल भर आया था। जिस पुरुष-रत्न को वह अपना सर्वस्व समर्पण कर डालना चाहती थी, वह उसके निकट है, और शायद वह उसे सदा के लिये अपनी प्रीति-ग्रन्थि में बाँध सकती है। किन्तु—

"शीला"—डाक्टर के कंठ से एक आर्द्र पुकार आई।

सुशीला ने महसूस किया, उसमें कंपन है, तरलाई है।

"क्या ?" उसने धीमे से जवाब दिया। देखा कि मधुसूदन एकटक उसी की तरफ़ देख रहा है।

"क्या मैं तुम्हारे इस निर्मल स्नेह के बिना रह सकता हूँ, शीला ? आज ऐसा लगता है कि तुम मेरे जीवन का सबसे बड़ा अवलम्ब हो। तुम न हो तो मेरे सारे सपने, सारा सुख मिट्टी में मिल जाय !"

शीला कुछ न बोली। इन शब्दों में अन्तर्हित जो अर्थ था, उसे तथा उनमें छिपे हुए सुख और आनन्द के साम्राज्य का आकलन करने का वह प्रयत्न करने लगी, किन्तु मस्तिष्क ने जवाब दे दिया, भावनाएँ उमड़ पड़ीं और वे पानी बनकर आँखों में उतर आईं—

क्या वह दरअसल किसी के जीवन के लिये इतना महत्व, इतना मूल्य रखती है ? क्या यथार्थ में अब उसका भी कोई 'अपना' है--क्या वह अब एकाकिनी नहीं है ?

यह सुख इतना भव्य, इतना उदात्त था कि उसकी कल्पना मात्र से उसका हृदय सिहर उठा और उसके शरीर में कँपकँपी-सी आ गई। आँखों से दो बड़े आँसू निकलकर टप-से मधुसूदन के कपाल पर गिर पड़े।

उन खारे बिन्दुओं की उष्णता से मधुसूदन द्रवित हो उठा। उसने चट से अनजाने ही अपना सिर उसकी गोद में रख दिया और दाहिने हाथ की दो उँगलियों से उसने आँसू पोंछते हुए कातरता

से कहा—

"शीला, रोओ मत, शीला—"

मधुसूदन और भी नज़दीक खिसक आया और उसने शीला की छाती में अपना मस्तक छिपा लिया। भावनाओं के आवेग में शीला के निश्वास गहरे एवं उष्ण निकल रहे थे। उसके हृदय की धड़कन डॉक्टर के कानों को साफ़ सुनाई दे रही थी।

शीला ने एकाएक दोनों हाथों से मधुसूदन का सिर अपनी छाती से ज़ोरों से सिमटाकर तथा तनिक झुककर उसके बालों तथा मस्तक का उत्कटता से चुम्बन ले लिया—

डॉ॰ मधुसूदन संपूर्ण समर्पण-भाव से आँखें मूंदकर उसकी गोद में शान्त पड़ा रहा। उसे लगा कि स्वर्ग का सुख उसके हाथ में आ गया है।

फिर अकस्मात् उसने अनुभव किया कि शीला का बदन कठिन हो रहा है। दूसरे ही क्षण वह बोली—"डॉक्टर मैं जाती हूँ, काफ़ी वक्त हो गया है।"

"क्यों, इतनी जल्दी?" वह आश्चर्य से बोला और हड़बड़ाकर उठ बैठा।

"हाँ, मुझे जाना ही चाहिये।" और वह पलंग पर से उठकर नीचे खड़ी हो गई।

'क्या नाराज़ हो गईं, शीला?"

"जी नहीं," उसने नीची गर्दन करते हुए कहा। उसका चेहरा गंभीर था।

"फिर?"

जवाब नदारद।

उसने अपना गीला साड़ी, ब्लाउज़ उठाया और चप्पल पहन कर जाने को उद्यत हुई।

डॉक्टर अचम्भे में आ गया। आख़िर उसे एकाएक क्या

हो गया ?

"अच्छा डॉक्टर, गुड-नाइट !"

"ठहरो शीला, मैं मोटर से पहुँचा देता हूँ।"

"नहीं ज़रूरत नहीं," उसने कहा, "मैं पैदल चली जाऊँगी।"

"इस बरसाती रात में मैं इस तरह तुमको हर्गिज़ नहीं जाने दूँगा !" उसने दृढ़ता से कहा। उसकी आवाज़ की सख़्ती देख कर शीला कुछ न बोली। डॉक्टर ने मोटर निकाली और दोनों उसमें जा बैठे।

रास्ते में डॉक्टर ने पूछा–"एकाएक तुम्हें क्या हो गया, शीला ? तुम गुस्सा तो नहीं हो गईं ?"

"जी नहीं," उसने भावनाहीन शब्दों में कहा। डॉक्टर को लगा, उसकी वाणी में रुखाई है।

"तुम मुझे बेचैन करके जा रही हो, इसका कुछ ख़याल है ?"

शीला चुप।

"क्या मेरे हाथ से कोई ग़लती हो गई, शीला ?" उसने आजिज़ी से पूछा।

"नहीं डॉक्टर बिलकुल नहीं।" और उसने ऐसा कहते हुए अपना हाथ डॉक्टर के हाथ पर रख दिया। इस स्पर्श में भी ममता थी। मधुसूदन को समाधान हुआ।

"तब फिर ऐसा व्यवहार क्यों किया ?"

शीला फिर चुप।

दवाखाना आ गया। शीला बोली–"ज़रा आप भी 'पेशेंट' को देख लीजिये। तब तक मैं भी कपड़े बदलकर आपकी धोती और ओवरकोट लौटा दूँ। इनका यहाँ दीखना अच्छा नहीं। मेरे प्राइवेट कमरे में मेरी एक साड़ी है।"

डॉक्टर ने वैसा ही किया।

लौटती बार उसके दिमाग़ में रह-रहकर यही सवाल उठता था

कि अकस्मात् शीला की वृत्ति में परिवर्तन क्यों हो गया ? क्या बात है ? क्या वह उसके बर्ताव से नाराज़ है ? पर इसका उत्तर तो उस ने दे दिया था। जिस आत्मीयता से उसने अन्तिम बार उसका हाथ छुआ था, उस से यह स्पष्ट था कि वह यह बतलाने के लिये उत्सुक है कि वह नाराज़ नहीं है।

फिर ? क्या कारण है जो शीला इतनी द्रवित हो जाने के बाद अचानक इतनी कठिन हो गई ? इस प्रश्न का उत्तर उसे ढूँढे नहीं मिलता था।

नारी के हृदय को पहचानना ही कठिन है। वह एक अगम्य और अज्ञेय पहेली है और पुरुष उस पर कितना भी अधिकार क्यों न जताये, और उसके शरीर पर कैसी भी हुकूमत क्यों न चलाये, उसके अन्तर्मन को तो शायद अन्तर्यामी को छोड़कर और कोई नहीं जानता। इस सत्य की उसे प्रतीति तो हुई, किन्तु उसके कारण उसके हृदय में घोर उथल-पुथल भी मच गई।

—:०:—

मास्टर की औरत की देख-भाल कर तथा उसे दवा दे नर्स सुशीला जब आराम करने के लिये मैटर्निटी होम के निजी कमरे में आई तब एक बज चुका था। वह कम्बल ओढ़कर बिस्तर पर लेट रही, पर उसे नींद कहाँ ? उसके दिमाग़ में तो विचारों का भीषण चक्र चल रहा था—

आज यह क्या हो गया उसे ? ज़िन्दगी भर उसने अपने आप को अद्भुत आत्म-शक्ति से संवरण करके रखा और आज वह क्योंकर अपनी भावनाओं का प्रदर्शन कर बैठी और इस तरह प्रवाह में वह गई—भले ही वह चन्द मिनटों के लिये क्यों न हो ?

उसे इसका पछतावा बिलकुल नहीं था कि उसने आवेश में आकर डॉक्टर के बालों और कपाल का चुम्बन ले लिया। मधुसूदन के प्रति उसके हृदय में जो परमोत्कट प्रेम था, आदर था, उसमें सात्विकता ही सात्विकता थी; वह दुर्दम्य और दुर्जय क्षुधा शारीरिक नहीं, आत्मिक थी। बरसों के निर्दय आत्म-कर्षण के कारण तो वासनाएँ मर-सी गई थीं और अब तो उसे वासना का ख़याल आते ही घृणा और अरुचि से कँपकँपी आ जाती—

और यह भी इतना ही सच था कि मधुसूदन के आचार-व्यवहार में भी एक क्षण के लिये भी, इस वासना की तनिक सी अस्फुट छाया भी नहीं दिखाई दी। उस ओर से उसे कोई शिकायत नहीं थी—

और परम निर्मल-प्रेम के विशुद्ध प्रवाह में, अपनी प्रीति की

साधना में, वे कुछ भी करते, किसी भी हद तक जाते, तो भी उसे कोई शिकायत न होती, क्योंकि उसके हृदय की वफ़ादारी थी प्रीति के लिये, औचित्य-अनौचित्य के दाक़ियानूसी नियमों के प्रति नहीं—

फिर भी वह अस्वस्थ हुई, घबड़ा गई—

क्यों ?

एक ओर तो आज उसके सुख की कोई सीमा न थी, मानो पृथ्वी और निशा अपनी समस्त माधुरी के साथ उसके हृदय में अपना दिव्य संगीत भर रही हो, क्योंकि आज मधुसूदन ने पहली बार पूछा था कि "क्या मैं तुम्हारे इस निर्मल स्नेह के बिना रह सकता हूँ ?" और कहा था कि "तुम मेरे जीवन का सबसे बड़ा अवलम्ब हो !" इन शब्दों को सुनने के लिए उसके कान आतुर थे, मानो उनके द्वारा उसे वरदान प्राप्त होने वाला था।

हाँ, वरदान तो था ही। नारी के जीवन का सबसे मधुर, सबसे सुन्दर क्षण वही होता है, जब उससे कोई पुरुष इस प्रकार के शब्द कहता है।

इसलिये आज वह धन्य हो गई थी—स्वर्ग में थी।

किन्तु—

एक शंका तो थी ही कि आज पिता को खोकर गाँव से लौटने के बाद, डाक्टर का हृदय यूँ ही दुःख-कातर एवं भावना-विह्वल हो उठा था। ऐसी हालत में उसका भावुक हृदय किसी सहारे या स्नेहाश्रय की तलाश में शीला के पास दौड़ आया, तो आश्चर्य क्या ? यह दौड़ आना विशिष्ट भावनाओं के दबाव के कारण है। मन की साधारण हालत में यह होता तो इसका कुछ महत्व भी रहता।

एक बात और है। डॉ० मधुसूदन खूबसूरत, सुखभावी, कमाऊ युवक है—उसका व्यक्तिगत सौन्दर्य आज अपने उच्च शिखर पर

है। आज उससे विवाह करने के लिए कितनी ही सुन्दर एवं योग्य युवतियाँ सर-आँखों तैयार हो जावेंगी। कोई भी लेडी डॉक्टर उससे विवाह करने में स्वतः को धन्य ही समझेगी। वह बम्बई में थी तब ऐसी दो लेडी डॉक्टरों को जानती थी जो मधुसूदन की ओर सदैव बुभुक्षित आँखों से देखा करती थीं और उसके प्रेम को पाने के लिये लालायित थीं—यद्यपि मधुसूदन का उनकी ओर कोई ध्यान नहीं गया था। इसी ध्यान न जाने के कारण ही सुशीला का उसकी ओर प्रथम ध्यान गया था। उसमें से एक पारसी रमणी थी और एक ईसाई। प्रयत्न किया जाय तो मधुसूदन के लिये और भी अच्छी लड़कियाँ मिल सकती हैं। उनकी तुलना में वह, सुशीला राजेश्वर, कितनी गौण है, कितनी अयोग्य!

रूप नहीं, गुण नहीं, लियाक़त नहीं, उमर नहीं—कुछ नहीं! अव्वल तो ऐसी स्त्री की तरफ़ मधुसूदन की दृष्टि ही क्यों गई, यह अचरज की बात है। फिर गई तो कितने दिन टिकेगी? दलील के लिए मान भी लिया जाय कि उन दोनों का विवाह हो गया—जो नितान्त असम्भव है—तो यह स्पष्ट है कि ज्यों ज्यों उसकी—शीला की—उम्र बढ़ेगी, त्यों-त्यों डाक्टर की उसके प्रति अरुचि भी बढ़ेगी। मुमकिन है वह घृणा का रूप ले ले और डॉक्टर इतना दुखी हो जाय कि उसके जीवन-ध्येय में, माँ को दिये गये वचन में भी फ़र्क़ आ जाय और उसकी ज़िन्दगी भी दूभर हो जाय।

हो सकता है, चूँकि वह अत्यन्त मातृ-वत्सल है, वह ऐसे नारी के प्रेम की तलाश में है जो उसे वह वात्सल्य दे सके। शायद वह शीला की ओर इसी कारण आकर्षित हुआ हो!

लेकिन ऐसा प्रेम तो कोई भी स्त्री उसे दे सकती है। आदर्श पत्नी उमर में छोटी भी हो तो भी प्रेयसी, सखी, माता और कन्या—इन चारों रूपों को समाहित करती है। इसके लिए उसे सुशीला राजेश्वर के आँचल की ज़रूरत नहीं है।

और फिर विवाह के बाद कल यदि मधुसूदन का जीवन दुखी एवं निराशामय हो जाय तो क्या वह बरदाश्त कर सकेगी ? उसे अपने जीवन के बारे में तनिक भी चिन्ता नहीं है। उसने जो कुछ भोगा है, उससे ख़राब तो उसकी हालत हो ही नहीं सकती। होगी तो उसकी हालत बेहतर ही होगी, निस्संदेह बेहतर होगी; किन्तु मधुसूदन के असन्तोष का भार लेकर क्या वह जीवित रह सकेगी, ख़ासकर जब कि वह स्वयं उसका कारण हो ?

यह एकदम असम्भव है। यह कभी नहीं हो सकता—कदापि नहीं !

इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी मधुसूदन के प्रति जो प्रीति है, वह न्यून है। वह इतनी गहरी, उत्कट और सर्व-व्यापी है, इसीलिए तो उसकी चिन्ता और ज़िम्मेदारी बढ़ गई है। जो बात मधुसूदन भी नहीं सोच सकता, वह उसे सोचनी होगी, क्योंकि वह कितना ही सफल और मशहूर डॉक्टर क्यों न हो, कुछ बातों में बिलकुल शिशु जैसा निर्बोध है।

रात में उसने अपनी स्वाभाविक भावनाओं को उमड़ आने दिया—वह कितना प्रसन्न, कितना सुखी हो गया था ! किसी एक व्यक्ति के जीवन को सुख देने की शक्ति उसमें है, यह भावना क्या कम आनन्द दायक है ?

लेकिन दूसरे ही क्षण, ज्योंही वह कठिन हो गई, त्योंही उसका चेहरा कैसा स्याह पड़ गया था—बिलकुल उतर गया था ! और अन्त तक वह वैसा ही बना रहा।

उसके दिल को चोट पहुँची, यह देखकर उसे भी मन-ही-मन अत्यन्त दुःख हुआ। उस समय तो क्रिया की प्रतिक्रिया के आवेग में वह वैसा कर गई, किन्तु इस समय, जब वह अधबुझे लैम्प के धुँधले प्रकाश में शांत होकर अपने एकान्त बिस्तर पर पड़ी है तो उसे महसूस हो रहा है कि अपने रूखे व्यवहार से डॉक्टर के भावुक दिल को दुखाकर उसने अच्छा नहीं किया—उस पर अत्याचार ही किया।

आख़िर क्यों उसने ऐसा किया ? वह अपने आचरण के लिए स्वतः को छोड़कर और किसके सामने जवाब देह है ? क्या उसने यह डाक्टर को आगे बढ़ने से रोकने के लिए किया ? क्या उसकी पुरुष से आत्म-रक्षा करने की स्त्री-सुलभ प्रवृत्ति जाग उठी ?

नहीं, ऐसा भी नहीं, क्योंकि उसने दिल को टटोलकर देखा कि मधुसूदन से उसे कभी किसी भी तरह का अन्देशा नहीं रहा। एकांत में, अँधेरे में, कहीं भी उसके साथ रहते उसे कोई फ़िक्र नहीं होगी, भय नहीं होगा। जिनके अन्तःकरण में किल्विष है, उन्हीं को ऐसी हालत में डर लग सकता है।

फिर क्यों उसने डॉक्टर का दिल दुखाया ? सो अच्छा नहीं किया। उसका परिमार्जन करना ही होगा।

इसलिये जब वह दूसरे दिन सुबह डॉक्टर से मिली और "गुडमार्निङ्ग, डॉक्टर !" कहकर उसका स्वागत किया तो मधुसूदन अचम्भा करने लगा। उसने देखा कि शीला की वाणी में वही आस्था, चेहरे पर वही मुस्कराहट है, जो पहले रहा करती थी— बल्कि उससे भी ज्यादा, मानो कल रात को कोई घटना ही नहीं घटी थी। डॉक्टर शीला के स्मित के प्रति उत्तर में दिल खोलकर हँस दिया, किन्तु यह सोचे बगैर नहीं रहा कि आख़िर उसका यह कौन-सा स्वरूप है !

नारी पहेली तो है ही। उसका उल्लास और उदासीनता, स्मित और गंभीरता, स्नेह और कठिनता, आत्म-समर्पण और आत्मसंयम, ये सब परस्पर विरोधी भाव उसके व्यक्तित्व के अन्दर एक साथ ही छिपे हुए रहते हैं। किस समय कौन-सा भाव सतह पर आकर अपना अस्तित्व बता जायगा, इसका भरोसा नहीं, और उस भाव के पीछे कौन-सी प्रेरक-शक्ति है, इसका तो तनिक भी पता नहीं।

इस पहेली को कौन बूझे ?

—:०:—

सोलह मील दूर एक मौजे. से दोपहर को एक आदमी आया कि वहाँ के मालगुज़ार की पत्नी की हालत ख़राब है डॉक्टर साहब को फ़ौरन् उन्हीं की मोटर में लिवा लाओ! रोग वही प्रसूति-संबंधी। डॉक्टर ने नर्स को तैयार होने के लिये कहा और वे दोनों दवाओं का बक्स लिये उस आदमी के साथ निकल पड़े।

तेरह मील पक्की सड़क थी और तीन मील अन्दर की तरफ़ कच्ची। फिर भी मोटर जा सकती थी। बीच में जंगल था।

रुग्णा की हालत दरअसल ख़राब थी और एकाध घण्टा डॉक्टर नहीं पहुँचता तो बचना मुश्किल था। इसलिये उसे ख़तरे से बाहर करने के लिये भी देर लगी। जो काम दो एक इंजेक्शन से हो जाता, उसके लिये छः इंजेक्शन देने पड़े—सो भी ठहर-ठहरकर ताकि सुई की प्रतिक्रिया ख़राब न हो और रुग्णा उसे बरदाश्त कर सके।

नर्स डॉक्टर की मदद करती जा रही थी और वह जो माँगता, वह बक्स में से निकालकर देती जाती थी। मधुसूदन संपूर्ण एकाग्रता से अपने मरीज़ की तरफ़ ध्यान दे रहा था। वह बाहरी दुनिया को बिलकुल भूल गया था, यहाँ तक कि नर्स को, उस मालगुज़ार को, जो पास ही खड़ा था और जिसने डॉ॰ को देखते ही अपनी पगड़ी उतारकर उसके चरणों पर रख दी थी कि 'डॉक्टर, सारी जायदाद चली जाय, परवाह नहीं, पर लक्ष्मी को बचाइये!' और अपने तमाम वातावरण को भूल गया था। बस वह था और थी वह व्याधि-ग्रस्ता कराहती हुई नारी। उसका यह स्वभाव था

कि रोग जितना ही दु:साध्य होता, इलाज करने में उसे उतना ही उत्साह आता।

सुशीला उसकी इस एकाग्र सेवा से खूब परिचित थी। इस तरह आत्म-विस्मृत होकर की जाने वाली सेवा-साधना का दृश्य इतना मंगल एवं पुनीत होता है कि उसे देखकर आँखें नहीं थकतीं। इस प्रकार के प्रत्येक अनुभव के बाद शीला का आदर एवं कौतुक बढ़ जाता, प्रेम तो बढ़ता ही।

डॉक्टर के दिमाग़ की पार्श्व भूमि में यह विचार तो रहता ही था कि उसके प्रत्येक हाव-भाव और कृति को देखनेवाली, सहानुभूति और ममता से भरी दो आँखें हैं, और शायद उनके कौतुक को ही वह अपने सारे परिश्रम का मूल्य मान लेता था। और एकाध क्षण के लिये यह विचार ज़रूर आता कि यदि शीला साथ न होती तो--?

चार घण्टों के सतत प्रयत्न के बाद छठवाँ इंजेक्शन लगाकर उसने रोगी की नाड़ी देखी और वह रुग्णा की ओर देखकर खुले दिल से मुस्करा दिया—उसकी आँखें छोटी हो गईं और दन्त-पंक्ति लालटेन के मन्द प्रकाश में भी चमक उठी। उसका मधुर एवं प्रशान्त स्मित उस स्त्री को भी संक्रामक साबित हुआ और वह भी, कमज़ोरी के बावजूद, क्षीणता से हँस पड़ी। उसके पति ने तो पिछले छः-सात दिनों से केवल उसकी कराह ही सुनी थी, आज उसकी मुस्कराहट देखकर वह भी खिल उठा और वह कमरा उन सबके आनंद से आलोकित हो उठा।

मालगुज़ार ने डाक्टर के पैर पकड़ लिये और उस स्त्री की आँखों में असीम कृतज्ञता के भाव चमक उठे।

घड़ी में देखा तो नौ बज चुके थे। मधुसूदन ने कहा—"ठाकुर साहब, भगवान को धन्यवाद दीजिये, आपकी पत्नी बच गई। अब हमें इजाज़त हो--"

"डॉक्टर साहब, आज तो आपही हमारे भगवान बनकर आये हैं," उसने गद्गद होकर कहा, "लेकिन आपका मुँह मीठा किये बग़ैर हर्गिज़ नहीं जाने दूँगा।"

इसी मुँह मीठा करने में और एक घण्टा निकल गया। जब वे निकले तो सवा दस बज चुके थे। मालगुज़ार ने दोनों को हार पहनाये और ढाई सौ रुपयों की थैली अर्पण की। डॉक्टर ने इतना पैसा लेने में आनाकानी की तो वह बोला—"आप तो देव-मानुष हैं डॉक्टर साहब ! आपका धन तो लोगों के कल्याण के लिये ही ख़र्च होता है। और यह कुछ भी नहीं है—केवल पत्र-पुष्प है। आपने मुझ पर जो अनंत उपकार किये हैं, उनकी भरपाई तो इस जन्म में नहीं कर सकूँगा।"

डॉक्टर और नर्स रवाना हुए। मालगुज़ार ने राह बतलाने के लिये दो आदमी दिये तो डॉक्टर ने कहा, "कोई ज़रूरत नहीं—यह रास्ता मेरा देखा हुआ है।" फिर भी ठाकुर के आग्रह से कच्ची सड़क तक वे लोग मोटर में साथ आये ही; और पक्के रास्ते पर आते ही उतर पड़े।

"Congratulations (बधाई) डाक्टर !" सुशीला ने एकांत मिलते ही कहा, "आज तो आपने चमत्कार कर दिखाया। जब हम पहुँचे थे तब तो वह लगभग ख़तम-सी..."

"थैंक यू !—यह तो ईश्वर की कृपा है शीला, और तुम्हारी प्रेरणा !" डाक्टर ने भरे अन्तःकरण से कहा।

"मेरी प्रेरणा तो क्या है, ईश्वर की कृपा अवश्य है, और तुम्हारी निर्लिप्त, अनासक्त सेवावृत्ति !"

जिस प्रकार एक ही मुसीबत दो हृदयों को नज़दीक खींच लाती है, उसी प्रकार विशुद्ध सेवा का पुण्यकार्य भी दो सहभागियों के हृदय को एक ही ग्रन्थि में बाँध देता है। एक स्त्री को वे अभी ही मृत्यु-पथ से लौटा लाये थे, इसका आनंद तो उनके मन में था

ही। सुशीला का हृदय अभिमान और कौतुक से फूला नहीं समाता था। इसीलिये स्वाभाविक रीति से उनके बीच की औपचारिकता नष्ट हो गई। उस रात्रि को उन दोनों के बीच जो अवगुंठन खड़ा हो गया था, वह तो शीला ने दूसरे दिन सुबह ही खोल दिया था और तब से उनके संबन्ध उतने ही खुले और स्नेहमय थे, जितने कि पहले थे।

रात अँधेरी थी और हवा में कुछ ठंडक थी। जंगल तो था, किन्तु घना नहीं था। इसके अलावा डॉक्टर को किसी बात का डर नहीं लगता था। बचपन में जो कुछ भी डर रहा हो, वह बापू ने उसे रात-बिरात जंगल में, श्मशान में, पहाड़ों में, घाटियों में, घुमा-फिरा कर निकाल डाला था। यह इलाका उसका खूब जाना हुआ था और उसके पहाड़ों और चट्टानों से, नदी-नालों और झाड़ियों से उसे डर नहीं, प्रेम था—मानो वे उसके सगे-साथी हों। इसलिए उनके बीच भ्रमण-विचरण करने में उसे बड़ा सुख मिलता था। आज भी उसका मन मुदित है।

"शीला, तुम्हें पता नहीं, मैं तुमसे कितनी स्फूर्ति पाता हूँ! स्त्री पुरुष की आदि-प्रेरक शक्ति है, यह मैं किताबों में पढ़ता था। तुम्हें अपने समीप पाकर उस सत्य का साक्षात् अनुभव कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे हृदय में मेरे ध्येय के प्रति गहरी सहानुभूति है और तुम्हारी स्नेहल आँखें मेरे प्रत्येक कार्य को अत्यन्त कौतुक की दृष्टि से देखती रहती हैं। यह प्रोत्साहन, भले ही वह मूक हो, मेरे दिल को कितना बढ़ावा देता है, इसकी तुम्हें कल्पना नहीं हो सकती। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इसी प्रकार तुम यदि साथ रहो तो मैं न जाने अपने ध्येय की कितनी बड़ी ऊँचाई को पा सकूँगा और व्यक्तिगत जीवन में भी कितना सुखी होऊँगा!"

सुशीला इन शब्दों को सुनकर मन-ही-मन अतीव निगूढ़ सुख अनुभव कर रही थी। उसके हृदय में एक विचित्र प्रकार का मधुर

स्पंदन झंकृत होने लगा। वह खुद विश्वास तो नहीं कर सकी कि वह इतना महत्व रखती है, जो मधुसूदन के जीवन की स्फूर्ति बन सके, फिर भी वह जानती थी कि डॉक्टर जो कह रहा है, वह उसकी सच्ची भावना है, अति-रंजित शब्दोक्ति नहीं। वह धन्य हो उठी, इसलिए नहीं कि वह अपने आपको कुछ समझने लगी, वरन् इसलिए कि विधाता ने उस पर अकस्मात् यह कृपा की अमृत-वर्षा क्यों कर दी, जो वह मधुसूदन जैसे काँचन-हृदय पुरुष-श्रेष्ठ की प्रीति-भाजन बन सकी। क्या उसके पैंतीस वर्ष के कष्टमय जीवन के परिमार्जन के लिए ही भगवान ने आज का दिन उदित किया है ? या वह उसका पिछले जन्म का संचित पुण्य है जो आज इस दिव्य प्रीति के रूप में उसकी अंजलि में आ पड़ा है। उसका हृदय स्निग्ध हो गया, आँखें मुँद सी गईं !

मोटर धीमी रफ़्तार से जा रही थी। मधुसूदन की भावनाएँ आन्दोलित हो उठी थीं, इसलिए उसने कहा कि कुछ देर ठहरकर आराम कर लेना ज़रूरी है, वरना मोटर चलाना ख़तरनाक होगा। एक छोटी सी नदी के पुल के पास मोटर रुक गई। यूँ तो वह नदी ग्रीष्म में सूख जाती थी, पर इस समय वर्षा के कारण उसमें काफ़ी पानी बह रहा। आसमान निरभ्र था और उसमें आकाश गंगा बह रही थी। उत्तर की तरफ़ ध्रुवतारा चमक रहा था, ऊपर सिर पर, अभिजित और श्रवणकुमार। ईशान में देवयानी और शर्मिष्ठा की तारावलियाँ लुकलुका रही थीं और नैऋत्य में पारिजात अस्तायमान होने की तैयारी में अग्रसर हो रहा था। प्रकृति में, पृथ्वी पर तथा गगन में—समस्त वातावरण में शान्ति और शुचिता छाई हुई थी। निसर्ग की पार्श्वभूमि में ऐसा जान पड़ता था कि वे दो मानव भी उसी के अविभाज्य अंग हैं। सारी जड़-चेतन सृष्टि एक ही शक्ति से व्याप्त थी।

"शीला !" डॉ० मधुसूदन ने कंपित स्वर में पुकारा, मैं सीधा-

सादा आदमी हूँ, कहाँ क्या बातचीत करनी चाहिये, इसके नियम और औचित्य का मुझे ज्ञान नहीं है और न मैंने उसकी कभी परवाह ही की है। मैं तो इस बात का आदी हूँ कि जो हृदय में है, उसको वैसे-का-वैसा ही व्यक्त कर दिया जाय—भावनाओं को प्रकट करने के लिए सुन्दर शब्दों की पनाह न ली जाय। आज मेरा मन मुझसे कह रहा है कि मैं तुम्हारे सामने अपना हृदय खोलकर रख दूँ और फिर अंतिम निर्णय तुम पर छोड़ दूँ। सम्भवतः तुम मेरी भावनाओं को जानती भी हो, फिर भी अब मैं बात को गोल नहीं रखना चाहता—" और वह रुक गया।

सुशीला ठीक-ठीक अंदाज़ा लगा गई कि अब क्या आ रहा है, फिर भी उसका हृदय उत्कण्ठा से और सुख की संवेदना से स्पंदित हो उठा। उसने अपनी समस्त आत्मीयता को आँखों में उँडेलकर डॉक्टर की तरफ़ देखा मात्र—मुँह से कुछ न बोली।

"शीला!" अब उसकी आवाज़ में अधिक आर्द्रता थी।

सुशीला ने "हूँ" कहा, किन्तु यह शब्द उसकी ज़बान से नहीं, गले से भी नहीं, हृदय के गहनतम कोने से निकला ऐसा जान पड़ा।

डॉक्टर मधुसूदन ने अपना बायाँ हाथ सुशीला की कमर से लपेटकर उसे अपने पास खींच लिया और वह भी बिना आनाकानी किये खिंच आई। डॉक्टर मोटर के काँच में से सामने ही बत्तियों के क्षीण प्रकाश में देख रहा था। एकाएक आवेश में आकर बोला—

"शीला, क्या तुम और मैं जन्म-मरण के साथी नहीं बन सकते? तुमने मेरे व्यवसाय में हाथ बँटाया है और उसे सफल बनाया है। क्या तुम जीवन में भी अपना हाथ मेरे हाथ में न दे सकोगी? मेरा अन्तर्मत मुझसे कह रहा है कि हम दोनों एक दूसरे की प्रीति पाकर धन्य हो उठेंगे और जीवन को यशस्वी बनाकर, दरिद्रों और पीड़ितों की सेवा में उसे अर्पण कर देंगे। तुम यदि मेरी ज़िन्दगी के पथ की सहगामिनी हो जाओ तो मेरे जीवन में संगीत

मुखरित हो उठेगा और मेरी कार्य-शक्ति कई गुना बढ़ जावेगी। मेरे पास तुम्हें देने के लिये सिवा मेरे हृदय के और कुछ नहीं है। उसे स्वीकार कर सको तो मैं तुम्हारा अनन्त उपकार मानूँगा। तुम राज़ी हो जाओ तो फिर हम शीघ्र ही विवाह कर लें और हम दोनों अपनी छोटी-सी दुनिया को आनंद, सुख और सेवा से आलोकित कर दें। बोलो, शीला!"

और मधुसूदन ने उसे अपने बाहुपाश में जकड़ लिया।

सुशीला के शरीर में एक सिहरन-सी चमक उठी। उसने अपना मस्तक मधुसूदन के बायें कंधे पर टिका दिया और आँखें मूँद लीं।

डॉक्टर ने अपने बायें हाथ की उँगलियों से सुशीला के बालों को सहलाया और फिर धीमे-धीमे उसके कपोलों, ठोढ़ी और मुँह को थपेड़ा। उसके उष्ण निःश्वासों का स्पर्श उसके हाथों को छुआ। सुशीला के मुँह से अस्फुट स्वरों में निकला-"डॉ-क्ट-र!"

सुशीला ने मधुसूदन का दाहिना हाथ खींचकर अपने हृदय पर रख दिया और उसे अपनी दोनों हथेलियों से दबा दिया। डॉक्टर को उसके हृदय की धड़कन साफ़ सुनाई पड़ती थी।

मधुसूदन ने सुशीला का सिर अपनी छाती से सिमटा लिया और अपना बायाँ कपोल उसके मृदु बालों पर टेक दिया—

मधुसूदन ने देखा कि उसके हाथ पर गरम पानी की एक बूंद टप-से गिरी और एक क्षण के बाद दूसरी-तीसरी-एक धारा ही लग गई।

डॉक्टर भी अपनी भावनाओं को संवरण नहीं कर सका और मानो प्रति-भाव से ही उसकी आँखों से भी झर-झर पानी बहने लगा—

इस स्थिति में कौन क्या बोल सकता था? दोनों का कंठ रुद्ध हो गया और वाणी कुण्ठित हो गई। इस आत्म-विस्मृत, आत्म-विभोर, स्थिति में वे न जाने कितनी देर तक बैठे रहे! सतपुड़ा के

वन्य-प्रदेश में, जहाँ का अन्न, जल और वायु मधुसूदन की रग-रग में भरा था, तारागणों और नक्षत्रों के छत्र के नीचे, निशीथ के अन्धकार से वेष्टित, ये दो निर्मल हृदय अपने अश्रुओं के साथ ही साथ एकाकार हो रहे थे और यह मंगलमय अद्वैतत्व निस्संदेह चरम सुख की बात होती, किन्तु—

जहाँ मधुसूदन अपनी दिव्य प्रीति की परिपूर्ति के स्वप्नों को सत्य जगत में अवतरित होते देखकर आनंद-विह्वल हो रहा था, वहाँ सुशीला के हृदय में घोर अंतर्द्वन्द्व मचा हुआ था। उसे डर था कि मधुसूदन का जो स्नेहल हाथ उसके हृदय पर है, वह कहीं उसके गौप्य को न जान ले! डॉक्टर ने असीम सुख की अनुभूति में शीला के अश्रु-आवित नेत्रों का चुम्बन लेना चाहा कि वह कातरता से पुकार उठी—"डॉक्टर!"

"क्या है, रानी ?"—उसने अत्यन्त मृदुता से कहा।

सुशीला झिझकी। क्या बोले, कैसे बोले, सोच न सकी; किन्तु उसकी हिचकिचाहट का मधुसूदन को कोई पता नहीं था।

"शीला, आज तुमने मुझे कितना सुखी किया! मेरा जीवन सार्थक हो गया! हम दोनों—"

"डाक्टर, ज़रा ठहर जाइये।" उसने मधुसूदन को रोककर कहा, "मुझे ज़रा वक्त दीजिये—सोच लेने दीजिये—"

"अब भी कुछ सोचने को बाक़ी है शीला ?" उसने आश्चर्य से पूछा।

"क्यों नहीं, डाक्टर ? यह तो ज़िन्दगी भर का सवाल है। खूब सोच-समझकर ही क़दम उठाना चाहिये। हमें जल्दी क्या है ?"

"हाँ, तुम्हें माँ से या और किसी से सलाह लेनी हो तो ले लो। मैं तब तक ठहरने के लिये तैयार हूँ। यदि जवाब 'हाँ' है तो मैं कितना भी ठहर सकता हूँ। बोलो, कब निश्चित उत्तर दोगी—परसों ?"

"नहीं डॉक्टर, इतनी जल्दी नहीं, और कुछ समय दीजिये।" उसने आज़िज़ी से कहा।

"तो एक सप्ताह में—अगले शुक्रवार की सन्ध्या को ?"

"हाँ, शा-य-द !"

"किस जगह-तुम्हारे यहाँ ? मैं तुम्हारी माँ से बिलकुल नहीं मिला हूँ, उस दिन उनसे भी मिल लूँगा और उनका आशीर्वाद भी ले लूँगा। ठीक है न ?"

"अच्छा !"

"तो शुक्रवार को छः बजे शाम को तुम्हारे यहाँ तय हुआ न ?"

"हूँ"—सुशीला ने धीमे से कहा।

मधुसूदन ने एक बार उसका सिर अपने सिर से लगाकर उसे छोड़ दिया और मोटर चालू की। दोनों फिर कुछ न बोले। डॉक्टर का दिल उछल रहा था और वह अपने ही सुख में इतना मशगूल था कि सुशीला गंभीर हो गई, इस ओर उसका ध्यान ही न गया। परिणय नारी के लिये पुरुष की अपेक्षा ज्यादा महत्व रखता है, इसलिये सुशीला इसका ज्यादा विचार करे, उसमें उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उसकी धारणा थी कि स्वर्ग-सुख उसके हाथ में आ रहा है और इसी आनंद में वह पागल-सा हो उठा।

—:o:—

शुक्रवार !

यह दिन डॉ॰ मधुसूदन के लिये दिवसों का शिरोमणि है। आज उसके भाग्य का फ़ैसला हुआ चाहता है।

उस रात्रि की प्रकृति की गोद में की गई प्रीति-अर्चना के बाद डॉ॰ मधुसूदन ने देखा कि शीला कुछ गंभीर हो गई है। ऐसा लगता था, जैसे उसके मन में घोर द्वन्द्व चल रहा हो। वह अपने मन की भावनाओं को रोककर ऊपरी तौर पर अपनी सर्व साधारण प्रसन्नता बनाये रखने का प्रयत्न तो करती थी और इसमें उसे ग़ज़ब की सफलता भी मिलती, फिर भी एकाध क्षण तो ऐसा होता ही कि उसकी अन्तर्भावनाएँ ऊपरी सतह पर आकर आँख की खिड़कियों में से झाँक जातीं, और मधुसूदन को उनके अस्तित्व का पता चल जाता। शीला के हाव-भाव और व्यवहार से, उसके कौतुक और आस्था से, वह निश्चय पूर्वक जानता था कि उसके हृदय में डॉक्टर के लिये प्रीति-कमल विकसित हो उठा है; किन्तु उस प्रीति की फलश्रुति होने से पहले मानव अधिक गहराई से उसके यशापयश के बारे में सोचता है, नारी तो विशेषत: अधिक सोचती ही है। प्रणय के लिये आत्म-समर्पण करना उसके जीवन का सबसे क्रान्तिकारी परिवर्तन भी तो है—सो शीला गंभीर हो जाय, इसमें आश्चर्य नहीं।

डॉक्टर के स्वागत के लिये सुशीला ने छोटी-सी चाय-पार्टी का इन्तज़ाम किया। कमरे की साफ़-सफ़ाई के अलावा गुलदस्तों और

फूल पत्तियों का आयोजन सादा, किन्तु सुन्दर था। सुशीला की वेश-भूषा भी बिलकुल सादी थी—शुभ्र साड़ी और आसमानी रंग का ब्लाऊज़; लेकिन वह उसे किस क़दर खुलकर दीखती थी! देव-गृह के प्रदीप के सौम्य आलोक की तरह उसके व्यक्तित्व की आभा छिटक रही थी। मधुसूदन भी अपनी नित्य की शुभ्र पोशाक पहने हुए था। फ़र्क़ इतना ही था कि स्टेथस्कोप की जगह, जो हमेशा उसके गले में लटका या खीसे में से झाँकता हुआ दिखाई देता था, आज कोट के बटन होल में निशिगंधा का फूल और अशोक की पत्ती का छोटा-सा सुन्दर गुच्छ लगा हुआ था।

शीला ने डॉक्टर का माँ से परिचय करा दिया—वह बेचारी सीधी, सरल, ईश्वर-भीरु, धर्म-प्रिय, वृद्धा नारी थी, जिसकी केवल एक ही साध थी—अपनी दुखिया कन्या का अभीष्ट-चिन्तन और एक ही कर्म था—ईश्वर का भजन-पूजन। सो वह डॉक्टर के चाय-पानी के बाद इजाज़त माँग, राधा-कृष्ण के मन्दिर में गीता प्रवचन सुनने चली गई। आज एकादशी जो थी!

अब कमरे में डॉक्टर और शीला ही थे। डॉक्टर ने एक कोने में देखा, रूई के बुदने में सितार रक्खी है। पूछा—

"शीला, तुम सितार बजाती हो?"

"पहले बजाती थी, पर अब कई दिनों से हाथ ही नहीं लगाया है—वह देखिए धूल खाती पड़ी है।"

"गाती भी हो?"

"गाती थी कुछ-कुछ, अब वह भी बन्द है।"

"क्यों?"

"यूँ ही।"

"आख़िर कोई कारण भी तो हो। यूँ ही कोई संगीत थोड़े ही छोड़ देता है?"

"पहले मैंने संगीत की शरण ली थी अपनी भावनाओं को

शांत करने के लिये; किन्तु अब देखती हूँ, उससे वे उभड़ती ही हैं और उनकी उथल-पुथल हृदय में घोर अशान्ति मचा देती है। यह अशांति सर्वथा कष्ट-दायक तो नहीं होती, किन्तु उसकी मधुरता कभी-कभी असह्य हो उठती है—"

"तुम्हारे संगीत-प्रेम का तो मुझे कभी पता ही नहीं चला शीला ! तुम्हारे अंतर में, सागर के उदर की तरह न जाने कितने मणि-माणिक्य भरे पड़े हैं, जिनको मैं जान नहीं सकूँगा—"

"उसमें ईंट, पत्थर, काई और ज़हरीले पौधे भी तो हो सकते हैं !" शीला ने बीच में ही कहा।

"अगर उदर इस तरह गन्दा हो तो ऊपरी सतह इतनी सुन्दर नहीं हो सकती !"

"क्यों नहीं ? 'मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदये तु हलाहलम्' प्रकृति के लोग कम हैं दुनिया में !"

"न हों, किन्तु हलाहल ज़्यादा दिन छिपा नहीं रह सकता। मुझे तो वहाँ अमृत-ही अमृत दीख पड़ता है।"

सुशीला कुछ नहीं बोली। मधुसूदन असली प्रश्न पर आना चाहता था, किन्तु सुशीला का प्रयत्न था कि वह जितना टल सके टल जाय तो अच्छा। उससे वह घबड़ाती-सी नज़र आती थी।

किन्तु मधुसूदन उसे कैसे टलने देता ? उसके चेहरे पर उत्सुकता, अपेक्षित सुख की आकांक्षा, स्पष्ट दृष्टि-गोचर हो रही थी। अपने जीवन का सबसे महत्व-पूर्ण प्रश्न शब्दों में पूछने में संभवतः उतना सौन्दर्य न हो, इसलिये उसने अपने खीसे से रेशमी रूमाल में बँधा हुआ एक फूलों का पुड़ा निकाला।

सुशीला ने उसकी तरफ़ चौंककर देखा कि उसमें से बेला के दो सुन्दर हार निकले !

मधुसूदन उन्हें सुलझाने लगा। एक हार तो ठीक सुलझ गया, किन्तु दूसरे का डोरा अचानक तड़् से टूट गया—

"अरे !" डॉक्टर के मुँह से विस्मय और दुःख-मिश्रित उद्‌गार निकल पड़ा। उसे [illegible] लगा।

"ख़ैर—" ऐसा कह कर उसने साजा हार अपने दोनों हाथों में पकड़ा और शीला को पहनाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

"आओ शीला, यह मंगल हार तुम्हें पहना दूँ !"

शीला का चेहरा सफ़ेद फ़क पड़ गया, उसके ओंठ कंपित होने लगे और आँखों में घबड़ाहट का भाव छा गया। वह अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ाकर जल्दी जल्दी बोली—

"नहीं, डॉक्टर, नहीं !"

"क्यों शीला ?" डॉक्टर ने सहमकर पूछा, "अब भी कुछ सोचना बाक़ी है ?"

"नहीं डॉक्टर, मैं खूब सोच चुकी। मैं आपकी यह माला स्वीकार न कर सकूँगी। आप मुझे क्षमा कर दें, डॉक्टर, मुझे सख़्त अफ़सोस है—"

सुशीला की आँखें नीची हो गईं। उसका सारा शरीर काँप रहा था—भावनाओं के आवेग के कारण। वह दाँतों तले अपने ओंठों को दबाकर अपने को संवरण करने का प्रयत्न कर रही थी।

डॉक्टर का चेहरा खट्-से उतर गया—एकदम स्याह पड़ गया। घोर निराशा के आघात ने एक क्षण में ही उसके सुन्दर मुखचन्द्र को ग्रहण-सा लगा दिया। शीला ने उसे देखा और उसे देखकर उसकी छाती फटने लगी।

"क्यों शीला यह अचानक अनपेक्षित निर्णय क्यों ?"

सुशीला ने बड़े प्रयास के साथ अपने आपको सख़्त बनाकर कहा—"आपने इस सवाल पर अपनी ही दृष्टि से विचार किया दीखता है डॉक्टर, किन्तु मेरी दृष्टि से नहीं किया। आपसे मैं उमर में आठ वर्ष बड़ी हूँ, फिर भी अनुभव और भावनाओं में एक पीढ़ी का अन्तर है। उस ख़याल से तो आप मेरे सामने निरे बच्चे हैं !

आप ही बतलाइये, इस अनमेल विवाह से मुझे सुख मिल सकता है ? मैं यह सब कहना नहीं चाहती थी, किन्तु जब बात 'क्राइसिस' पर आने लगी तो मैं चुप न रह सकी। आपके दिल को दुखाते मुझे बहुत रंज होता है, किन्तु आप डॉक्टर हैं, मेरी बात ज़रूर समझ सकेंगे। मुझे माफ़ कर दीजिये, डॉक्टर—" और सुशीला ने चट-से अपना मुँह फेर लिया। एक आवेग में वह इतना सब कह तो गई और मानो एक ही साँस में कह गई, पर अब उसका बाँध टूटता-सा नज़र आने लगा और यह आशंका उठी कि अब जल का प्रवाह फूटकर फो-फो करके वह निकलेगा—

"ओफ़ !" डॉक्टर के मुँह से एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ा और उसके पैर लड़खड़ा उठे। अपने को गिरने से बचाने के लिये उसने कुर्सी की पीठ पकड़ ली। बायाँ हाथ माथे पर जा ठहरा और वह डॉक्टर, जो शक्ति और आनन्द का जीवन्त प्रतीक था, वहाँ खड़ा रह गया, हत-बल और दीनता की मूर्ति बनकर, जैसे उसकी रीढ़ ही टूट गई हो !

फिर उसने बड़ा गहरा निःश्वास लिया। मुँह से सिर्फ़ इतना ही निकला—"हाँ, मैं समझा—"

उसने एक बार सुशीला की तरफ़ देखा तो पाया कि वह अब भी मुँह फेरकर खड़ी है। उसके दोनों हाथ उसकी छाती से जकड़े हुए है, सिर झुका हुआ है और श्वासोच्छ्वास तेज़ी से चल रहा है।

"ठीक है सुशीलाबाई, आप ठीक ही कहती कहती हैं। मेरे कारण आपको तकलीफ़ हुई, उसके लिये क्षमा करें। मैं जाता हूँ, नमस्कार !"

और वह एकदम दरवाजे की तरफ़ घूम पड़ा। एक बार उसका पैर नीचे बिछी दरी में अटककर फिर लड़खड़ाया और वह गिरते-गिरते बचा; पर तुरन्त ही उसने अपने आपको सँभाला और फिर

वह बिना एक भी बार पीछे देखे दरवाजे से बाहर निकल गया।

दरवाज़ा खुलने की आवाज़ कानों में पड़ते ही सुशीला ने चट से मुँह फेरा और वह डॉक्टर की तरफ़ देखने लगी, किन्तु वह कहाँ उसकी ओर देख रहा था? यदि देखता तो उसे सुशीला का अश्रु-स्रावित चेहरा दीख पड़ता, जिसमें से पानी झर-झर बहकर नीचे ज़मीन पर टप-टप गिर रहा था। असीम व्यथा से पीड़ित, हृदय की सच्ची भावनाओं से प्रतिबिम्बित यह जल-सिक्त चेहरा यदि मधुसूदन एक बार भी देख पाता तो शायद हमारी कथा की गति ही न्यारी हो जाती। अपनी यथार्थ भावनाओं का गला घोंटकर वह जो अभिनय कर रही थी, उसका इस वक्त पर्दाफ़ाश हो गया था और वह नारी अपने यथार्थ स्वरूप में खड़ी थी!

पर जिस पुरुष को यह देखना चाहिये था, उसने नहीं देखा, क्योंकि डॉ० मधुसूदन ऐसा पुरुष नहीं था, जो किसी नारी की इन्कारी के बाद एक क्षण भी उसके दरवाजे पर भिक्षा माँगने की ग़रज से खड़ा रहे।

अपने सारे स्वाभिमान और आत्म-बल को समेटकर वह चला गया—

और जब उसकी मोटर स्टार्ट होकर भर्र-से निकल गई, तब सुशीला 'हे भगवान!' कहकर ज़मीन पर—उसी स्थान पर—दीनता से बैठ गई, जहाँ मधुसूदन खड़ा था और सिसक-सिसक कर रोने लगी। जिस स्थल पर उसके पद-चिन्ह उछले थे, उस पर अपना माथा टेककर वह अपनी अविरल अश्रु-धाराओं से उसका अभिषेक करने लगी।

जब उसके रुदन का प्रवाह अवरुद्ध हो गया तब वह उठकर अपनी माँ के देव-गृह में गई और ठाकुरजी के सामने नत-मस्तक होकर बोली—'हे अन्तर्यामी ठाकुर, मेरे मन को तुम्हीं जानते हो और तुम्हीं कह सकते हो कि आज मैंने जो दिव्य किया है, वह मेरे

प्राणप्रिय-मधुसूदन के हित में उचित था या नहीं। यदि उचित है तो इसका सारा लांछन और सारी पीड़ा मुझी को दो और उसे कठोराघात से शीघ्र ही मुक्त कराकर उसके जीवन को स्नेह और सुख से भर दो। यदि उचित नहीं किया है तो जो दारुण दुख-भोग तुम दोगे, उसे मैं सिर झुकाए बरदाश्त कर लूँगी और चाहोगे तो यह काला मुँह किसी को न दिखाऊँगी। आज मैं अपने किये का निर्णय नहीं कर सकती। मुझ पर दया करो ठाकुर, और मुझे राह दिखाओ ना !"

इसके बाद वह अपने सोने के कमरे में जाने के लिए लौटी तो देखा कि टेबल पर डॉक्टर का रेशमी रूमाल रखा है, जिसके कोने में M लिखा हुआ है और वहाँ एक ताज़ा और एक टूटा हुआ हार पड़ा हुआ है, जिसमें से दो तीन फूल बिखर कर गिर पड़े हैं।

माँ की आँखों से बचाने के लिए उसने ये सब चीजें समेटीं और अपने बिस्तर पर जा लेट रही। बेला के फूलों की टूटी हुई माला अपनी छाती पर रखकर अपने अंतरतम की पीड़ा को पानी बनाकर वह बहाने लगी। उस दारुण व्यथा में भी मधुसूदन के रूमाल से अपने आँसू पोंछने में उसे निगूढ़ सुख मिल रहा था, किन्तु यह सुख ऐसा विचित्र था कि ज्यों-ज्यों उसे पाने के लिए वह प्रयत्न करती थी, त्यों-त्यों उसके अश्रुओं का प्रवाह अधिक ज़ोरदार होता जाता था।

—:०:—

आठ बजे रात को सुशीला की माँ मन्दिर से आई तो बोली, "क्यों बिटिया, सोई क्यों हो? क्या तबीयत अच्छी नहीं?"

"नहीं अम्मा, सिर्फ़ ज़रा-सा सिरदर्द है।"

"ज़्यादा ख़राब हो तो फिर मैं एकादशी का जागरण करने नहीं जाऊँगी—" उसने सुशीला के कपाल पर हाथ रखकर कहा।

"नहीं नहीं, ऐसा बिलकुल नहीं है। तू मजे में जा सकती है। अच्छी नींद आ जाय तो सुबह बिलकुल चंगी हो जाऊँगी।"

"कुछ खाने के लिये हल्की चीज़ बना दूँ? साबूदाना—"

"नहीं अम्मा, तू तो ज़रा-सी बात का इतना बतंगड़ बना देती है! तू कब तक लौटेगी?"

"एक-डेढ़ बजे तक। हरि-कीर्तन और भजन है, मुहल्ले की सब औरतें जा रही हैं।"

"अच्छा है माँ, चली जा। मेरी बिलकुल फ़िक्र मत करना—"

सुशीला की माँ फिर मंदिर चली गई। यही तो उस बेचारी साध्वी का सबसे बड़ा संबल था।

माँ के जाने के बाद सुशीला दरवाज़ा लगा बत्ती छोटी करके लेट रही। रोते-रोते उसकी आँखें सूज गई थीं। खुशक़िस्मती इसी में थी कि माँ आई तब कमरे में प्रकाश नहीं था, सो वह कुछ देख नहीं पाई। आज ओंठों के पास आया हुआ अमृत का प्याला उसने ठुकरा दिया था और असाधारण नैतिक बल दिखलाया था, किन्तु एकान्त में वह बल न जाने कहाँ-से-कहाँ काफूर हो गया

और वह इस क़दर बेवसी और दीनता से फूट-फूट कर रोई कि जिसकी हद नहीं। अपने परम प्रीति-भाजन की प्रणय-याचना की अवहेलना करने की शक्ति उसमें थी, किन्तु इस क्षण उसी पुरुष के स्वाक्षर-अंकित रूमाल और टूटे हुए हार की साक्षी में वह अपना सारा बन्धन और संयम खो चुकी थी। बीच-बीच में उसके मुँह से यही निकलता—

"मधुसूदन, मेरे प्यारे मधुसूदन! मुझे क्षमा करो, क्षमा करो, यदि तुम मेरे मन की बात जान सको तो पाओगे कि मैंने जो तुम से कहा, वह सब झूठ है। तुम मेरे हृदय को चीर कर देखो तो पाओगे कि वहाँ तुम्हारी ही मूर्ति सिंहासीन है। मैंने जो किया है, वह तुम्हारे कल्याण के लिये ही किया है। तुम मुझ प्रौढ़ा के समीप सुखी नहीं हो सकोगे। तुम्हें तो अपने रूप-गुण की युवती ही परम सुख दे सकेगी और ऐसी कई तरुणियाँ तुम्हारे चरणों पर अपना सिर झुका देंगी। मैं तुम्हारे पूर्ण विकसित जीवन-पुष्प का सर्वनाश नहीं बनना चाहती। तुम्हारे प्रीति-दान से तो मैं धन्य हो चुकी हूँ और यह परमनिधि जीवन के अन्त तक मुझे शक्ति और साहस देती रहेगी; किन्तु मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण तुम अपने जीवन के उच्चतम् विकास एवं सुख से वंचित हो जाओ और उमर ढलते ही तुम्हें पश्चाताप का मौक़ा मिले। क्या तुम कभी मेरे हृदय को समझ सकोगे?—"

कहीं उसने पढ़ा था कि त्याग ही प्रेम की कसौटी है। आज अपने सर्वस्व-सुख का त्याग करके वह कुछ गौरव और अभिमान भी अनुभव कर रही थी। और यह त्याग कुछ ऐसा-वैसा नहीं था। उसके जीवन में प्रेम की आर्द्रता उसे छूकर भी नहीं गई थी। आज यह प्रेम मिला तो ऐसे वैभव के साथ कि जिसे योग्य-से-योग्य रमणी भी सर-आँखों स्वीकार कर ले—फिर उस जैसी साधारण प्रौढ़ा स्त्री की बात ही क्या है? वह स्वार्थी होती तो

आज इसी प्रेम को लेकर संसार में सबसे सुखी नारी हो जाती; पर वह स्वार्थी नहीं है—सुशीला हर्गिज़ स्वार्थी नहीं है !

इस समय कोई उसकी भग्न-मूर्ति को देखे—उसकी आँखों, बालों और ओंठों की हालत देखे, उसकी शैय्या और तकिये की हालत देखे, प्रणय-वंचित नारी की सारी व्यथा, वेदना और निराशा मूर्त्त-स्वरूप में वहाँ पड़ी थी। कहाँ सुशीला का आत्म संयत, शक्तिशाली स्वरूप और कहाँ आज का यह असंयत-असहाय रूप !

नारी का बाह्य स्वरूप कितना ही स्थिर-गंभीर क्यों न हो, उसके अन्तर्मन की हालत तो उसकी एकान्त-शैय्या से ही पूछो ! यदि उसके बिछौने या तकिये को वाणी होती तो उसके हृदय की इच्छा-आकांक्षा, व्यथा-वेदना तथा प्रणय-क्षुधा और परावलंबित्व की दारुण कथा फ़ौरन विदित हो जाती; किन्तु नारी जीवन का यही तो चमत्कार है कि उसके अन्तर में छिपे हुए चीत्कार की कल्पना उसके बाहरी स्वरूप से कभी नहीं हो सकती। पृथ्वी के उदर में जो ज्वाला धधकती रहती है, उसकी कल्पना कभी ऊपरी सतह के शीतल नदी-तालाबों, या हरे खेतों जंगलों से हुई है ?

ढाई-तीन घण्टे के क्रन्दन के बाद सुशीला को कुछ शांति मिली। उसने उठकर हाथ-मुँह धोया, बाल सँवारे और बिस्तर ठीक-ठाक किया। फिर उसने अपनी पड़ोसिन और सहेली पद्मावती चन्द्रा को बुलाया। फ़ुरसत मिलने पर वह उसे कभी-कभी गप्पें मारने के लिये बुला लिया करती थी। दोनों में काफ़ी मित्रता थी।

पद्मा आई, उस समय सुशीला बिस्तर पर ही अध-लेटी सी पड़ी थी। कमरे में अँधेरा-सा था। पद्मा ने आते ही कहा, "क्यों सुशीला दीदी, क्या बात है ? पड़ी क्यों हो ?"

"यूँ ही, आज ज़रा जाने क्यों मन बेचैन है ? सोचा, तुम्हें बुलाकर ही गप-शप लगाऊँ—वक्त कुछ अच्छा कट जायगा। काम

में तो नहीं थीं ?"

"नहीं। शाम को डॉक्टर आये थे ?"

"हाँ, उस समय तुम घर पर थीं ?"

"नहीं वे गये तब थी—उनकी तबीयत आज खराब मालूम पड़ी, तुमने देखा ?"

"हाँ, कुछ तो मुझे भी दीखी"......सुशीला ने मन ही-मन कहा, डॉक्टर का आने के समय का उल्लसित चेहरा वह देखती तो इस परिवर्तन से न जाने क्या-क्या सोचती !

"आज तुम दोनों में कुछ खटपट हो गई न ?" पद्मा ने शरारत से मुस्करा कर पूछा।

सुशीला यह अनपेक्षित प्रश्न सुनकर चौंक उठी। ज़ाहिर है कि पद्मा ने इस मामले में ठीक-ठीक अन्दाज़ बाँध लिया है और वह जितना दीखता है, उससे भी ज्यादा जानती है। फिर भी सुशीला को इसका बुरा न लगा। पद्मा दरअसल सुस्वभावी लड़की थी और अपने निर्मल हृदय के कारण उसने सुशीला का दिल पहले ही जीत लिया था। जभी तो आज अपने हृदय की विकलावस्था में उसे पास बुलाने में संकोच नहीं हुआ। मन में यह भावना भी दुबकी हुई बैठी थी कि यदि बातचीत में वह अपना हृदय पद्मा के सामने खोलकर रख सके तो उसे कुछ सेहत मिलेगी और पद्मा उसके विश्वास का दुरुपयोग नहीं करेगी, यह वह पक्का जानती थी। आज भी जी हल्का करने के लिये तथा सहानुभूति पाने के लिए वह किसी विश्वस्त-स्थान की तालाश में थी—

इसलिए पद्मा के प्रश्न का उसने अस्वागत नहीं किया। उत्तर में गर्दन हिलाकर बोली, "हाँ !"

पद्मा को भी सुशीला के खुलेपन के कारण सुख हुआ। आगे बोलने की हिम्मत बढ़ी। बोली—

"मामूली अनबन है कि कोई गहरी बात है ?"

"गहरी बात है।"

'सो तो मैं पहले ही अन्दाज़ कर गई !"

पद्मा चुप हो गई। सुशीला ने सिर्फ़ 'हूँ' कहा।

थोड़ी देर ठहरकर पद्मा ने कहा—

"सुशीला दीदी, डॉक्टर तुमसे प्रेम करते हैं ?"

अंधकार की यह विशेषता होती है कि इसमें दो व्यक्ति जल्दी ही आत्मीयता महसूस करने लगते हैं। जो प्रश्न दिवस के प्रकाश में, एक दूसरे का चेहरा और आँखें देखकर पूछे नहीं जाते, वे बड़ी आसानी से रात में पूछे जाते हैं। इसी कारण प्रेमियों का हृदय भी निशा के अँधेरे में ही अधिक खुलकर उद्भासित होता है। वन में दिन भर साथ रहने के बाद भी राम और सीता को वार्तालाप के लिए रात भी छोटी पड़ती थी, इसका कारण भी तो यही है।

"हाँ, जानती हूँ," सुशीला ने कहा, "और तुम ?....तुम नहीं जानतीं, पद्मा !"

"जानती हूँ," उसने समझते हुए उत्तर दिया।

"फिर कुछ देर ठहरकर पद्मा बोली - 'तुम दोनों जल्दी विवाह क्यों नहीं कर लेते ?"

"विवाह !" सुशीला ने चमककर पूछा, "क्यों ?"

"एक तो दोनों में आपस का प्रेम है और—"

"और क्या ?"

"नहीं, कुछ नहीं।"

"छिपाओ मत पद्मा ! हम दोनों एक दूसरे को इतनी निकटता से जानती हैं ! मैंने तुमसे कभी किसी बात का संकोच पर्दा नहीं किया और तुम मुझसे बात छिपाती हो ! क्या यह उचित है ?"

"नहीं सुशीला," उसने आर्द्र कण्ठ से कहा, "मैं तुम्हारी विश्वास-पात्र बन सकी, इसके लिए स्वतः को भाग्यशाली समझती

हूँ। तुम्हारे जैसी नारी-रत्न मिलना कठिन है—"

"इसे जाने दो बोलो क्या बात है ?"

"बात सुनकर मुझे बहुत बुरा लगा—"

"क्या ?"

"तुम्हारे और डाक्टर के बारे में शहर में स्कैंडल्स (लोकोपवाद) फैले हैं—"

"कैसे स्कैंडल्स ?"

"तुमने डॉक्टर के यहाँ रात बिताई थी ?"

"कब ?"

"जिस दिन वह पिता की मृत्यु के बाद गाँव से लौटे।"

"कौन कहता था ?"

"दीनू कहता था। उसे डॉक्टर वर्मा के कम्पाउंडर ने बतलाया।" दीनू पद्मा का पीठ का भाई है, जो म्युनिसिपल दफ़्तर में क्लर्क है।

"डॉक्टर वर्मा के कम्पाउंडर को किसने बतलाया ?"

"दीनू कहता था कि घिस्सू ताँगे वाले ने बतलाया। उसने शायद तुम दोनों को स्टेशन से उतारा था।"

"ओह !" अब सुशीला समझी। बात किस अनपेक्षित जगह से निकलकर कैसा विकृत रूप धारण कर लेती है, यह देखकर उसे दु:ख हुआ। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए इतना गिर सकता है ! बोली—

"पद्मा तुम जानती हो कि डॉक्टर वर्मा मधुसूदन से जलते हैं, क्योंकि उसने वर्ष भर के अन्दर ही उनकी दस-बारह साल की जमी प्रैक्टिस को ज़बरदस्त धक्का दिया। अब डॉक्टर मधुसूदन को बदनाम करके फिर से अपनी प्रैक्टिस वापस छीनने का उनका प्रयत्न दीखता है। मैं उस रात डॉक्टर को पहुँचाने उनके बंगले पर ज़रूर गई थी, लेकिन वहाँ एक-डेढ़ घण्टा ठहरकर अस्पताल चली

आई थी और वहीं रात भर रही। उस दिन मास्टर की औरत अस्पताल में थी और मेरी डायरी में भी यह बात दर्ज होगी ."

"मेरे मन पर इसका कोई असर नहीं है, दीदी। तुम निश्चित रहो, पर बाज़ार में चर्चा होने लगे, इससे बेहतर है, तुम विवाह को आगे न ढकेलो, बस! फिर कौन क्या कह सकेगा और डॉक्टर वर्मा भी क्या कर लेंगे?"

"मैं जल्द ही यह शहर छोड़कर चली जाऊँगी, पद्मा!"

'हैं, यह क्या पागल की-सी बात कह रही हो!" उसने चौंककर कहा।

"नहीं, ठंडे दिमाग़ से कह रही हूँ।"

"दोनों का प्रेम होते हुए भी, विवाह करने के बदले शहर छोड़ दोगी, इसका क्या मलतब? ज़रा-सी अनबन में इतना तूल देना ठीक नहीं--"

"नहीं पद्मा, अनबन तो जरा भी नहीं है, पर अब मैं यहाँ नहीं रह सकूँगी। मेरे कारण डाक्टर मधुसूदन के चरित्र पर छींटे उड़ें, यह मैं क़तई बरदाश्त नहीं कर सकूँगी। इससे तो मैं ज़हर खाकर मर जाऊँगी।"

"कैसी बात कर रही हो, बहन? तुम्हारे विवाह का ....."

"नहीं पद्मा, हमारा विवाह नहीं होगा," उसने दृढ़ता से कहा। पद्मावती अवाक् रह गई। यह अनपेक्षित वाक्य उसे वज्र की तरह लगा। बोली—

'क्यों, क्या बात है?"

"आज ही डॉक्टर ने विवाह का प्रस्ताव किया था और मैंने उसे अस्वीकार कर दिया है।"

"ओह, अब समझी! जभी तो....." और वह चुप होकर गंभीर हो गई।

दोनों स्तब्ध थीं। कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था। पद्मा के

सामने वह स्त्री एक पहेली बनकर खड़ी हो गई।

"सुशीला बहन, तुम मुझसे बड़ी हो, पर क्या मैं पूछ सकती हूँ कि तुमने ऐसा क्यों किया ?"

"क्यों किया ! स्त्री होकर तुम इतना भी नहीं समझ सकतीं पद्मा, कि मैं अपने गत-यौवन, असुन्दर जीवन से डॉक्टर के तारुण्य से ओत-प्रोत जीवन को घुन लगा दूँ—उसे बर्बाद कर दूँ ! डॉक्टर की यह सहृदयता है कि वे आज मुझे स्वीकार करने के लिए तैयार हैं, पर कल जब मेरी उमर और बढ़ेगी और डॉक्टर की कीर्ति और वैभव बढ़ेगा, तब उन्हें मुझसे विवाह करके पछतावा न होगा ? उस दिन उनके हृदय में जो निराशा होगी, उसे भला मैं बरदाश्त कर सकूँगी ? यह मुझ से कभी नहीं होगा पद्मा !"—सुशीला ने आवेश के साथ कहा किन्तु उसकी वाणी में कातरता थी।

"यह बात है !" पद्मा ने धीरे से कहा। सुशीला का दिव्य त्याग देखकर वह दंग रह गई। इस विचित्र परिस्थिति में भी उसके मन में यह विचार आये बिना नहीं रहा कि यदि वह सुशीला की जगह होती तो क्या डॉक्टर की प्रेम-याचना अस्वीकार कर सकती थी ? नहीं, उससे इतने बड़े सौभाग्य का अवमान नहीं हो सकता था—वह इस अमृत को नहीं छोड़ सकती थी। मन-ही-मन वह सुशीला के आगे नत-मस्तक हो गई; किन्तु न जाने क्यों, उसे लगा कि सुशीला का यह निर्णय ठीक नहीं है।

"बहन, इस तरह तुम डॉक्टर का अपमान नहीं कर रही हो ? इसका अर्थ यह है कि डॉक्टर हृदय के सौंदर्य के बदले शरीर के सौंदर्य को ज्यादा महत्व देते हैं। डॉक्टर मधुसूदन को देखकर तो ऐसा नहीं लगता—"

"मैं मानती हूँ और यह भी हो सकता है कि डॉक्टर पर इस तरह आरोप करके मैं उनका अपमान भी कर रही हूँ ! किन्तु भविष्य की घोर निराशा से आज का यह स्वप्न-सा अपमान ही

ठीक है। आज वे युवक हैं, ज़िन्दगी के गौरवकाल में से गुज़र रहे हैं। आज उन्हें अपने जीवन को बनाने का एक मौक़ा है। मेरे साथ विवाह के बाद यदि पश्चाताप हुआ तो उस समय उनके हाथ में कुछ भी नहीं रहेगा। पुरुष निसर्ग के ख़िलाफ़ नहीं जा सकता, पद्मा! उस चिर-सत्य को मद्दे नज़र रखकर ही हमें भविष्य के बारे में सोचना चाहिए।"

"भविष्य में डॉक्टर किस तरह बर्ताव करेंगे, सो तो ईश्वर ही जान सकता है। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि उनका स्वाभाव देखते हुए उन्हें पछताना नहीं होगा। यदि मेरा विश्वास सही है तो फिर ज़िन्दगी के प्रारम्भ में ही उनका दिल तोड़ देने का पाप तुम्हारे सिर पर नहीं होगा?"

"उस हालत में तो हो सकता है; पर मेरी धारणा नहीं कि मुझ जैसी साधारण स्त्री को खोकर उनका जीवन बर्बाद हो जायगा। मेरा ख़याल है कि किसी दूसरी योग्य स्त्री से विवाह हो जाने के बाद वे इस घटना को भूल जावेंगे और ज़्यादा सुखी होंगे।"

"भविष्य की अनिश्चितता के लिए वर्तमान के निश्चित सत्य को ठुकराने चली हो,—बहन? जानती हो, इसका क्या दुष्परिणाम होगा?"

"दुष्परिणाम स्थायी नहीं होगा, पद्मा। असमान के साथ विवाह करके डॉक्टर सुखी नहीं हो सकेंगे। वे ज़बान से नहीं कहेंगे, व्यवहार से भी ज़ाहिर नहीं होने देंगे; किन्तु एक बार भी उनके हृदय में यह विचार उठ गया तो फिर अफ़ीम खाकर मर जाने के सिवा मेरे लिए कोई चारा नहीं रह जायगा। और फिर मान लो कि मेरा अनुमान ग़लत है और तुम सही हो, और अधिकतर यही संभव है कि तुम्हीं सही हो, तो क्या कल ग़लती दुरुस्त करने का मौक़ा नहीं रहेगा? इस सवाल को मैं अपनी दृष्टि

से नहीं, उनकी दृष्टि से सोचती हूँ, पद्मा !

"हाँ, शायद; पर न जाने उस बीच क्या कीमत देनी पड़े ? डॉक्टर का हृदय भावुक है, उसे जो ठेस लगेगी, वह आसानी से मिटेगी नहीं। और वे ऐसे स्वाभिमानी दीखते हैं कि वे स्वयं अब कभी बात नहीं उठावेंगे।"

"उसकी मुझे चिंता नहीं। जिस दिन जान लूँगी कि मेरा उनके निकट रहना आवश्यक है तो मुझे अपना मस्तक उनके चरणों में झुकाने में ज़रा भी संकोच नहीं होगा। प्रीति के राज्य में मान कैसा, अपमान कैसा ?"

"तुम जानो बहन—समस्या इतनी जटिल है कि मैं कुछ भी सलाह नहीं दे सकती। ईश्वर तुम्हें उचित राह दिखावे, इसके अलावा और क्या कहूँ ? पता नहीं, डॉक्टर का क्या हाल होगा ?"

"भला हो, इसके लिए मैं निरंतर प्रार्थना करती रहूँगी !"

"इतने ही से काम चल जाय तो क्या पूछना है !"

"आज तो इसके सिवा कोई रास्ता नहीं है, पद्मा—" कहकर सुशीला ने दीर्घ निःश्वास लिया।

पद्मा कोई जवाब नहीं दे सकी। धीरे से ओंठों के भीतर-ही-भीतर बोली--अजीब उलझन है, अजीब उलझन है !"

—:o:—

उस घटना के दो दिन बाद ही नर्स सुशीला राजेश्वर त्याग-पत्र देकर बम्बई चली गई। जिस तरह बम्बई छोड़ कर आने का निर्णय करने में उसे दो मिनट भी नहीं लगे, उसी प्रकार डॉ० मधुसूदन का दवाखाना छोड़ने का निर्णय करने में भी नहीं लगे; किन्तु पहले निश्चय के वक्त मन में उल्लास था, उत्कण्ठा थी; आज घोर व्यथा है, भयंकर निराशा है।

माँ की भी कुछ समझ में नहीं आया, किन्तु बेटी का निर्णय उसी का निर्णय था, इसलिये वह कुछ न बोली। चुपचाप साथ चली गई।

और डॉक्टर ?

डॉ० मधुसूदन का तो हाल ही विचित्र था। वह कभी कल्पना तक नहीं कर सकता था कि सुशीला की अस्वीकृति पाकर उसे इतना कठोर आघात बरदाश्त करना पड़ेगा ! जब से उसने उसे देखा है तब से क्रमशः उसकी अनुरक्ति मृदु एवं गहन होती चली जा रही थी। एक अननुभूत अनुभूति, अनिर्वचनीय सुख, जिसकी संसार की किसी भी भावना से तुलना नहीं, उसके हृदय में छाकर उसके सारे जीवन को संगीत और आलोक से भर रहा था। एक तो वैसे ही उसका हृदय कवि या कलाकार के हृदय की तरह संवेदनात्मक था, भावुक था; फिर प्रीति के प्रादुर्भाव से उसे दिव्य दृष्टि-सी प्राप्त हुई। फिर उसके हृदय के सौन्दर्य का क्या पूछना है ! उसे लगने लगा कि एक अज्ञात, किन्तु अतीव रमणीय प्रवाह

के कारण उसका समस्त जीवन क्षण-प्रति-क्षण उन्नत एवं समृद्ध हो रहा है और वह ऐसे सुन्दर साम्राज्य में प्रवेश पा रहा है, जहाँ परियों और देव-दूतों का निवास है।

लोग कहते हैं कि प्रेम अन्धा होता है; पर यह ठीक नहीं। प्रेम जैसी आँखें खोलनेवाली शक्ति और कोई नहीं; वरना यह कैसे संभव हो सकता है कि प्रेमी को, निशा में, चन्द्र में, नक्षत्रों में, वृक्षों और प्रसूनों में, नदी में, वनों में, विश्व की इतनी-इतनी सी वस्तु में अपूर्व सौन्दर्य दीखने लगे ? यही रात्रि पहले भी आती थी, चन्द्र और नक्षत्र पहले भी जगमगाते थे, वृक्ष और प्रसून पहले भी लहलहाते थे, नदी पहले भी बहती थी और वनों की हरियाली पहले भी छिटकती थी; पर आज वह निशा दो विदग्ध हृदयों को एकाकार करने वाली प्रेमल सखी मालूम पड़ती है। चन्द्र और नक्षत्र प्रिय के संदेश-वाहक जान पड़ते हैं। वृक्ष और प्रसून मुक्त हास्य करते हैं, नदी का जल कलकल-गीत गाता है और वन और उपवनों की हरितिमा में प्रेयसी के मुख-कमल का प्रतिबिम्ब चमक उठता है। यह सब चमत्कार क्यों और कैसे हो गया, यह डॉक्टर न कह सका; किन्तु सतपुड़ा के अंचल में, उस पुण्य-मयी रात्रि में, जब उसके तथा शीला के अश्रु अपने हृदयों के प्रतिनिधि बनकर एक हो रहे थे और प्रीति की परिपूर्ति का प्रथम आस्वाद उसके जीवन में चैतन्य एवं नवप्राण संचारित कर रहा था, उस रात्रि को, घर लौटने के बाद, वह रात भर सो नहीं सका। बिस्तर में इस करवट से उस करवट होता रहा तथा आँखें खोलकर अंधकार में देखता रहा—एक अपरिसीम, अवर्णनीय सौन्दर्य की आभा !

वह एकाएक पुकार उठा—यह चमत्कार है ! नवजीवन है ! पुनर्जन्म है ! यह अद्भुत घटना उसके जीवन में हो सकी, इस ईश्वरीय प्रसाद के कारण उसका हृदय कृतज्ञता से परिपूर्ण हो गया। प्रभु की महिमा की ओर निर्देश करते हुए वह बोल उठा—

धन्य है ! धन्य है !!

तब से उसे लगा कि वह ज़मीन पर नहीं, हवा में तरंगों के साथ उड़ रहा है, जाग्रत नहीं है, मधुर स्वप्न देख रहा है, और इन स्वप्नों की कोई संख्या नहीं, उनके सौन्दर्य की कोई सीमा नहीं।

किन्तु आज ?

आज वे सारे स्वप्न छिन्न-विच्छिन्न हो गये और आँखों के सामने घनघोर अंधकार छा गया। प्रेरणा और प्राण के जिस स्रोत का अमृत पीकर उसने जीवन को समृद्ध और सफल बनाने की आशाएँ बाँध रखी थीं, वह केवल सूख ही नहीं गया, वरन दुःख के उत्ताप की वजह से वाष्प बनकर उसके हृदय का दाह बन गया। यदि यही दुर्भाग्य उसके प्रारब्ध में लिखा था, तो क्यों शीला उसके जीवन में आई ? क्यों उसने उस गुजराती महिला के मातृ-विमुख नवजात शिशु को गोद में लेकर, उस एक परम सहानुभूतिमय दृष्टि-निक्षेप में उसके हृदय को इतना आंदोलित कर दिया ? क्यों वह उसके एक पत्र पर बम्बई छोड़कर उसके पास चली आई ? क्यों उस दिन, पिता की मृत्यु के बाद, उसने अपना सारा मातृत्व बरसा कर उसके दुःख-तप्त अन्तःकरण को सान्त्वना एवं शीतलता दी ? और क्यों उसने उस अँधेरी रात्रि में, शर्मिष्ठा-देवयानी तारावलियों की साक्षी में अपने हृदय के उद्वेग को, अश्रुओं के अर्घ्य को अपने अर्घ्य के साथ विलीन होने दिया था ? क्यों, वह सब क्यों ?

इतना सब हो जाने के बाद आज की यह इन्कारी कितनी निर्मम है, कितनी कठोर ! आज जो घाव उसके हृदय को लगा है, क्या वह कभी भी भर सकेगा ?

डॉक्टर मधुसूदन यद्यपि गर्वित और अभिमानी नहीं था, फिर भी उसके मन में कहीं तो भी यह सूक्ष्म आत्म-विश्वास छिपा हुआ बैठा था कि उसकी प्रणय-आराधना को अस्वीकार करने का सामर्थ्य सुशीला में नहीं है; किन्तु आज वह आत्म-विश्वास मिथ्या

साबित हुआ। उसने पहली बार साफ़-साफ़ महसूस किया कि सुशीला का स्वतंत्र अस्तित्व है, उसकी भी रुचि-अभिरुचि है, और उसने जो कारण दिया, वह भी यथायोग्य ही है।

किन्तु उसने इतने दिन जो लगाव दिखलाया, जो आत्मीयता और स्नेह दर्शाया, उसका अर्थ क्या है?

उसका अर्थ यही है कि सुशीला एक मित्र बनने के लिए तैयार थी, पत्नी नहीं। पत्नी बनने का आग्रह करने के कारण उसने उस जैसी सुस्वभावी, स्नेहशील नारी की मित्रता भी खो दी। यदि इस परिणाम की ज़रा भी आशंका होती तो वह इस सवाल को उठाता ही नहीं।

किन्तु नहीं उठाता तो कब तक नहीं उठाता? यह अनिश्चित हालत उसे क्या ज़्यादा दिन तक बरदाश्त हो सकती थी? पागल की तरह मृग-मरीचिका के पीछे भागने से क्या लाभ? जिस भावना की ओर हृदय अग्रसर हो रहा है, पर अन्त में यदि सफलता नहीं होने-वाली है तो क्या यह अधिक श्रेयस्कर नहीं कि समय पर ही आदमी चेत जाय? उस आशा की विफलता अधिक पहले साबित हो जाती तो और भी अच्छा होता।

फिर भी, वह यह मानने के लिए तैयार नहीं कि इस घटना से उसके पल्ले सिर्फ व्यथा-ही-व्यथा पड़ी है, सुख नहीं। एक विचित्र प्रकार का सुख है, जिसमें वेदना की छटाएँ मिली हुई हैं—वह है शीला की उन सब क्षणों की स्मृतियाँ, जब उसने अपने हृदय की स्नेहमयी आर्द्रता से उसके शुष्क हृदय को सिंचित किया था। उसकी अस्वीकृति के बाद भी उनका मूल्य कम नहीं हुआ है। शीला की जगह वे ही अब उसके एकाकी जीवन की चिरसंगी हैं। असफल प्रेम की घोर निराशा उसके जीवन को पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट नहीं कर सकेगी, क्योंकि यह निधि भी, जो बच रही है, स्वल्प नहीं है।

किन्तु साथ-ही-साथ यह भी उतना ही सत्य है कि अब जीवन में वह उल्लास नहीं रहा है, जो शीला के सतत् सान्निध्य के कारण रहा था। माँ के अन्तिम आदेश का पालन कराने के लिए ही मानो वह उसके जीवन में अवतरित हुई थी, ऐसा उसे लगा। फिर वह क्यों उसे अकेला छोड़कर यकायक चल दी ?

वह चल दी तो चल दी; किन्तु वह स्वयं तो कहीं नहीं जा सकता। वह स्वतः तो अपने जीवन से भाग नहीं सकता, विमुख नहीं हो सकता। कायर की तरह वह अपने कर्त्तव्य से मुँह मोड़ ले तो फिर माँ की अंतिम इच्छा का क्या होगा ? वह कैसे उसे पूर्ण कर सकेगा ?

माँ ! माँ !! तुम कहाँ हो ? तुम्हीं मुझे इस असह्यय वेदना को सहन करने की शक्ति दो न ? उसके बिना मैं कैसे तुम्हारी अनुज्ञा का पालन करूँ, कैसे अपना जीवन-व्रत निबाहूँ ?

इस असीम व्यथा में भी उसे माँ की स्मृति से बल मिला। उसे ढाढ़स बँधा कि वह मानव है, मानवोचित धीरज से ही उसे मुसीबतों का मुक़ाबला करना चाहिए तथा अपने कर्त्तव्य-पथ पर अडिग रहना चाहिए। माँ की यह अदृश्य शक्ति उसकी पीठ पर न होती तो इस कुठाराघात में न जाने इस भावना-शील हृदय का क्या हुआ होता ?

इसी शक्ति के परिज्ञान से उसने प्रणय-भंग के विदारक आघात को बरदाश्त किया। धैर्य और गांभीर्य की मूर्ति बनकर उसने अपने आपको सँभाला और जब सुशीला का त्याग-पत्र उसके हाथ में पड़ा, तब भी उसने एक शब्द से भी उसे वापिस लेने के लिए नहीं कहा। जीवन में ऐसे मौक़े आते हैं जब यह लगता है कि बस, सब कुछ चौपट हो गया और अब मृत्यु के सिवा और कोई आश्रय नहीं है, फिर भी उस घोर तिमिर में प्रकाश की एक क्षीण रेखा रहती है, जो कहती है, यह अंधकार चिरस्थायी नहीं है, अशाश्वत है।

काल-चक्र सदा ही प्रवर्तित होता है, इसलिये चल उठ, हिम्मत बाँध और आगे बढ़ ! ये दुर्दिन भी निकल जाने को हैं।

वह स्वयं सुशीला और उसकी माँ को स्टेशन पर पहुँचा आया। दवाखाने में लौटकर देखा कि एक स्त्री उसकी बाट जोहती खड़ी है। बोली—

"मैं मेन हॉस्पिटल में नर्स हूँ। मिसिस राजेश्वर ने आपके यहाँ काम करने के लिये कहा है।"

"उन्होंने कहा था ?"

"जी हाँ। कल ही आकर उन्होंने डेढ़ घण्टे तक मेरे बारे में 'इनक्वायरी' की और यहाँ काम करने के लिये कह गईं। मैं शुरू में घबड़ाई कि इतने बड़े डॉक्टर के यहाँ का काम सँभाल सकूँगी या नहीं, पर खुश भी हुई ! मैं अपनी ओर से भरसक कोशिश करूँगी—"

"अच्छी बात है। वहाँ से छुट्टी पा लो और काम पर आ जाओ।"

--:o:--

एक बजे रात को डॉक्टर के बँगले की घण्टी बजी।

"कौन है ?"

"मैं रामेश्वर सेठ के यहाँ का मुनीम, डॉक्टर साहब। आपको बुलाया है—सेठजी की साली की तबीयत ख़राब है।"

सेठजी का मकान डॉक्टर के दवाखाने के पास ही था। उनकी फ़िटन पर ही वहाँ तुरंत पहुँच गया। देखा, एक सजे हुए कमरे में एक तरुणी बिस्तर पर अन्य-मनस्क लेटी है, उसका चेहरा स्याह पड़ा हुआ है। डॉक्टर को लगा कि उसका रोग मानसिक ज्यादा मालूम पड़ता है—कपाल पर चिन्ता की रेखाएँ और आँखों में लज्जा और भय का भाव। वह डॉक्टर की आँख बचाने का सतत प्रयत्न कर रही थी।

"क्या तकलीफ़ है ?" डॉक्टर ने पूछा।

"पित्त भड़का-सा मालूम देता है, जब तब क़ै हो जाती है," मुनीम ने कहा।

"घबड़ाने की बात नहीं, अपचन होगा। अभी दवा की एक खुराक देने से अच्छा हो जायगा।"

"नहीं, डॉक्टर साहब, इतनी आसानी से नहीं होगा। आप इनको अच्छा कर दें तो सेठजी आपको संतुष्ट कर देंगे। लीजिए—" कहकर मुनीम ने सौ रुपये का एक नोट उनके सामने बढ़ा दिया।

"अभी ठहरिये, पहले दवा तो दे लूँ—" डॉक्टर ने कहा और उस ओर से मुँह फेर लिया।

"नहीं डॉक्टर, आप अभी रोग ही नहीं समझे हैं। यह सेठजी

की इज्ज़त का सवाल है!"

"इज्ज़त का सवाल? इसमें इज्ज़त की क्या बात है?" डॉक्टर ने आश्चर्य से पूछा। उसे लगा कि शायद यह स्त्री सेठजी के यहाँ मेहमान बनकर आई है और यदि बीमारी के कारण उसका कुछ भला-बुरा हो जाय तो संभवतः सेठजी पर दोष आयगा। इसीलिए शायद ऐसी चिन्ता की जा रही है।

इसके अलावा प्रणय-भंग के आघात के कारण डॉक्टर का संतुलन बिगड़ा था, जिससे उसके दिल और दिमाग़ में कुछ जड़ता आ गई थी। उसका मनःस्वास्थ्य ठीक नहीं था और वह अनमना-सा रहता। उसका जी उचटा हुआ था और कई बार वह कहाँ है, क्या कर रहा है, इसका उसे भान नहीं रहता।

डॉक्टर अभी भी बात नहीं समझा, यह देखकर मुनीम परेशान हो गया। बात को ज़रा और साफ़ करते हुए मुनीम ने धीरे से कहा, "डॉक्टर साहब, पित्त नहीं भड़का है, इनका पाँव भारी है!"

"ओफ़!" अब डॉक्टर के दिमाग़ में कुछ रोशनी पड़ी। दाल में काला तो दीख पड़ा, पर बात पूरी तरह समझने के लिए बोला—तो क्या हर्ज है! अपने आप ही क़ै बन्द हो जायगी। कौन सा महीना है?"

"चौथा—" मुनीम ने उल्लास से कहा। उसे लगा, डॉक्टर शायद राज़ी हो जाय।

"इनके पति कहाँ हैं?" डॉक्टर ने पूछा।

"प—पति? ये-ये तो विधवा हैं।"

"छिः! छिः! यह काम मुझसे नहीं होगा।" डॉक्टर एकदम उठ खड़ा हुआ।

बात बिगड़ती देखकर मुनीम घबड़ाया। उसकी वाणिज्य-वृत्ति जाग्रत हुई। बोला—"डॉक्टर साहब, दो सौ ले लीजिये, तीन-सौ, पाँच सौ...पर दवा दे दीजिये। आपका क्या बिगड़ता है? कौन

जान सकेगा ?"

"नहीं नहीं, हर्गिज़ नहीं—" उसने पसीना पोंछते हुए दृढ़ता से कहा, "मुझसे जीव-हत्या बिलकुल नहीं होगी। मैं जान बचानेवाला डॉक्टर हूँ, जान लेनेवाला क़साई नहीं !" ऐसा कहकर वह जाने के लिये निकला।

जब यह मालूम हो गया कि डॉक्टर मानेगा ही नहीं तो बग़ल के कमरे से रामेश्वर सेठजी त्रिपुण्ड लगाये, हाथ में कंडील लिये हुए, खड़ाऊँ बजाते-बजाते तथा मुँह से 'रामजी, रामजी !' कहते हुए निकले। बोले –

"क्या गुलछर्रे उड़ा रहे हैं, डॉक्टर साहब ? बड़े घर की बहू-बेटियों पर इतनी रात गये हाथ साफ़ करते शर्म नहीं आती ! रामजी, रामजी ! इस कलयुग में जो हो जाय, सो थोड़ा है !"

"हैं, यह आप क्या कह रहे हैं, सेठजी ? आपके मुनीम ही तो मुझे बुलाने आये थे—"

"मुनीम बुलाने आये थे !" सेठजी ने मुँह बनाकर कहा, "रामजी, रामजी ! ऊपर से तो बड़े साधु दीखते हैं, डाक्टर साहब, पर अन्दर से यह बात ? एक तो अपनी नर्स का काला मुँह करवा कर निकाल दिया और दूसरे मेरे ही घर में हाथ डाला। जवानी के ये रंग और कहीं बतलाइये डॉक्टर साहब ! बाज़ार तो सबके लिये खुला पड़ा है। जभी तो मैं कहता था कि ये शादी क्यों नहीं करते ! रामजी रामजी !"

"सेठजी, आप किससे ये सब बातें कर रहे हैं ?" डॉक्टर ने हैरत में आकर कहा। नर्स की घटना का ऐसा अर्थ लगाया जा रहा है, यह देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ। इस दुख के बोझ के नीचे उसका रोष दब गया और उसकी वाणी में जो संताप उतरना चाहता था, वह कमज़ोर हो गया।

"अब ज़्यादा चकमे मत दीजिये, डॉ॰ साहब। आपने तो मेरी

नाक ही कटवा दी। अब चुपचाप यहाँ से खिसक जाइये, वरना क्या गत हो—" सेठजी त्योरियाँ चढ़ाते हुए बोले। दूसरे ही क्षण मुनीम को इशारा करते हुए बोले—"निकालो यहाँ से इनको। इस बदनामी के बाद मैं कहीं भी मुँह दिखाने लायक़ नहीं रहूँगा। पड़ोसी हैं तो क्या हुआ, क्या मेरी विधवा साली ही मिली? रामजी, रामजी—"

"सेठजी—" डॉक्टर ने कुछ कहना चाहा, पर मुनीम साहब ने भी अपना रुख़ बदलते हुए कहा, "बस बहुत हो चुका डॉक्टर! अब यहाँ से तशरीफ़ ले जाइये, इसी में ख़ैर है—चलिये!"

ऐसा कहकर उसने उनका हाथ पकड़कर पिछले दरवाज़े से उन्हें बाहर गन्दी-सड़ी गली में निकाल दिया। डॉक्टर इस अनपेक्षित घटना-चक्र से इस क़दर हत-बुद्धि, अवसन्न हो गया कि वह पूरी तरह समझ भी न सका कि यह सब क्या हो रहा है! उसे अँधेरी गली में उतारकर जब मुनीम ने दरवाज़ा बन्द कर दिया तो डॉक्टर ने देखा कि उस पर किसी ने बिजली का टार्च फेंका। उसने पूछा—"कौन?"

"मैं दूखनलाल, डॉक्टर वर्मा का कम्पाउंडर!"

"यहीं रहते हो?"

"हाँ-हाँ, नज़दीक ही। आधे मील के फ़ासले पर-"

"ऐसा?"—डॉक्टर चल दिया और दूखनलाल भी चम्पत हो गया।

इतनी सब दुर्घटना हो जाने के बाद भी डॉक्टर की आँखों के सामने जो दृश्य बार-बार खिंच आता था, वह न उसकी बदनामी का था और न रामेश्वर सेठ की विकृत नीचता का, किन्तु उस व्यथित नारी का था, जो शर्म और ग्लानि से अपना सिर झुकाए झर-झर आँसू बहा रही थी और अपनी आँखों के सामने अपने ही व्यक्तित्व का इतना निर्लज्ज और अपमान-जनक खिलवाड़ देख

रही थी। डॉक्टर को अब स्मरण हुआ कि जब वह उस कमरे में से जाने के लिये निकला तो उसे उसी दु:खिता की ज़ोर की सिसकी सुनाई दी, जो उसके बाँध के विस्फोट की द्योतक थी। उस एक सिसकी में कितनी करुणा थी, कितनी आर्तता थी !

जब डॉक्टर चले गये तो सेठजी ने मुनीम को अलग बुलाकर कहा, "अब क्या होगा मुनीम जी ? यह डॉक्टर तो पक्का निकला !"

"हाँ, बड़े ताज्जुब की बात है। मेरा तो ख़याल था कि वह ऐसे काम करता होगा। उसके और नर्स के बारे में जो बातें सुनने में आती थीं, उस पर से तो यही लगता था कि वह हलके चरित्र का आदमी होगा और ज़रूर हमारा काम कर देगा।"

"बातें सुनने में क्या आती थीं, एक रोज़ रात को बारह बजे तो मैंने ही उसे मैटर्निटी होम में नर्स के प्राइवेट कमरे में घुसते हुए देखा, मेरी अटारी पर से वह हिस्सा दीखता है।" सेठ जी बोले।

"और घिस्सू ताँगेवाले ने नहीं बताया था कि वह नर्स डॉक्टर के बँगले में रात भर रही थी ? वह खुद उसे वहाँ पहुँचा आया था। अगर डॉक्टर का चरित्र वैसा न होता तो भला इतनी रात गये वह क्यों उसके यहाँ जाती ?"

"बिलकुल ठीक है। लेकिन अब क्या होगा, मुनीमजी ? वह इन्कार करेगा, यह मालूम होता तो उसे बुलाते ही नहीं। उसे अपनी पोल भी मालूम हो गई और काम भी न बना।"

"अपनी क्या पोल है, सेठजी ? आपने तो आज ऐसा नाटक कर दिखाया कि कमाल ! बदनामी का पाँसा उन्हीं पर उलट गया समझिये। उनका रात में अपनी मोटर पर न आना, गली के रास्ते भागना, उनके दवाखाने से अपना पड़ोस, उनकी जवानी और अविवाहित हालत, और फिर वह नर्स के बारे में भण्डाफोड़— लोगों को विश्वास करते देर न लगेगी। आप बेफ़िक्र रहें।"

मुनीनजी ने दिलासा दिया।

"पता नहीं मुनीमजी, डॉक्टर बड़ा मशहूर आदमी है और लोग उसे बहुत चाहते हैं। उसकी बदनामी में कहीं हमीं लोग खटाई में न पड़ जायँ। ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, अब काम कैसे बनेगा, सो तो बताइये !"

'क्या बताऊँ ? उस कम्बख्त वर्मा के कम्पाउंडर की दवा लग जाती तो इस डॉक्टर को बुलाने की नौबत नहीं आती। पर वहाँ भी किस्मत ही आड़े आई। ख़ैर, घबड़ाइये नहीं, कोई रास्ता निकल ही आयगा—"

और उन दोनों के बीच कुछ कानाफूसी शुरू हो गई। पता नहीं, उस एकान्त कमरे में वे दोनों नर-राक्षस क्या गुप्त षड्यन्त्र रच रहे थे ?

सेठ रामेश्वरजी की साली की कहानी ज़रा विचित्र है। सेठजी की पत्नी की मृत्यु हुए आज छः महीने ही हुए हैं। घर-गिरस्ती देखने वाला कोई नहीं, इसलिए और जीजाजी का दुःख हलका हो, इस हेतु से वह पहले एक महीने के लिये आई। वह बाल-विधवा थी और भूपाल स्टेट में उसकी काफ़ी जायदाद थी; पर 'जीजाजी' को अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद ज्यादा दुखी होते किसी ने देखा नहीं। यूँ वे बात-बात पर घर की रानी की याद करके आँखों को अपनी चादर लगा लिया करते थे; पर यह बात अलग है कि उस चादर को कभी एक बूँद से भी गीला होने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। मुँह से तो उनका 'रामजी, रामजी' जप निरन्तर चलता था। सो अपने दुःख में सेहत पाने के लिए वे अपनी जवान साली का आश्रय लेने लगे। उसकी उमर बीस-इक्कीस साल की थी, ज़बरदस्ती आत्म-दमन के कारण वह अब तक अछूती बची थी। सो जीजाजी के मोहक आकर्षण से न बच सकी। धीरे-धीरे वह उनके चंगुल में पूरी तरह फँस गई और उसका एक महीने का निवास बढ़ता चला गया। उसकी आज की हालत उसी का

परिणाम है। अब बदनामी को बचाने तथा जी चुराने की बात आई। आज डॉक्टर मधुसूदन का बुलावा उसी प्रयत्न के सिलसिले में था।

मुनीमजी को विदा करके सेठजी 'रामजी, रामजी' करते हुए अपनी साली के कमरे में घुसे। पहले दरवाज़ा बन्द किया और फिर उसके पलंग पर आकर बैठ गये। देखा कि वह अभी तक रो रही है।

"रोओ मत रूपा, इस डॉक्टर ने इन्कार कर दिया तो क्या हुआ ? अभी भी रास्ता निकल आयगा—" वे सान्त्वना देने के लिए बोले।

"तुम्हें ज़रा शर्म आनी चाहिये कि अपनी अधमता को छिपाने के लिये एक सज्जन के ऊपर लांछन लगाते हो। मैं तुमसे साफ़-साफ़ कहे देती हूँ कि यदि तुमने डॉक्टर साहब की बदनामी करने में ज़रा भी हाथ बटाया तो मैं तुम्हारी नीचता का भण्डाफोड़ करके ज़हर खा लूँगी। मेरा तो सर्वनाश हो ही चुका है, पर मैं एक नराधम के हाथ एक साधु पुरुष की बदनामी कभी नहीं होने दूँगी!" उसने अत्यन्त क्रोध से कहा। सेठजी को लगा कि उनके सामने उनकी शान्त स्वभाव की साली नहीं, साक्षात् चण्डिका देवी बैठी है। पहले तो सन्न हो गये, फिर ज़रा ठहरकर गुस्से से बोले, "रूपा, यह सब क्या कह रही हो ? ज़रा ज़बान सँभालकर बोलो। मैं नराधम और तुम ? तुम तो साक्षात सती-लक्ष्मी हो न!"

रूपा इस व्यंग्य से तिलमिला उठी। बोली, "तुम्हारी लम्पटता ने ही मुझे इस हालत में लाकर छोड़ा। मैं पहले ऐसा जानती—"

"मैं लम्पट था, पर तुम भी तो बच्ची नहीं थीं। तुम क्यों गिरीं ? मैंने तो कोई ज़बरदस्ती की नहीं—"

"मैं यह सब क्या जानती थी ? तुम तो मुझसे सयाने थे, तुम्हीं

ने तो मुझसे बार-बार कहा था कि घबड़ाओ नहीं, दुनिया कभी इस पाप को नहीं जानेगी और उलटे आज मुझी पर रोब गाँठते हो !"

"नहीं जानती थीं तो भुगतो !"

"मैं अकेले नहीं भोगूँगी, याद रक्खो। मेरी बर्बादी तो हो ही गई है, लेकिन मैं तुम जैसे नीचों का सरे-आम भण्डाफोड़ किये बगैर नहीं मरूँगी और मरने के बाद भी चुड़ैल बनकर तुम्हारी छाती पर बैठूँगी !" उसने रोष से कहा। उसकी आँखें मानो अंगारे उगल रही थीं।

सेठजी कायर तो थे ही, घबड़ा गये। बोले—"इतना नाराज़ क्यों होती हो ? मैं तुम्हें कहीं छोड़कर थोड़े ही जा रहा हूँ। अब भी तो तुम्हें बचाने की कोशिश कर ही रहा हूँ।"

"मुझे बचाने की कोशिश करो या न करो; पर डॉक्टर को यदि बदनामी से नहीं बचाया तो समझ रक्खो, तुम्हारी खैर नहीं।"

"क्यों, अब डॉक्टर पर दिल चल गया है ?"—अब की बार सेठजी अप्रतिभ हो, बेशर्मी से बोले।

"फिर वही बात। अपने ही नाप से दूसरों को न नापा करो, सेठजी ! याद रक्खो, यह मेरी कोरी धमकी ही नहीं है। यदि तुमने मेरी बात न मानी तो—"

"नहीं, नहीं, रूपारानी, भला मैं क्यों तुम्हारी बात नहीं मानूँगा ? अब तक कोई बात टाली है ?"—सेठजी ने नरमाई से कहा, "अब सो जाओ, रात बहुत हो गई। फिकर मत करना—मेरे सिर पर जो ज़िम्मेदारी है, उसे मैं खूब समझता हूँ, समझीं ! रुपया-पैसा पानी की तरह बहाऊँगा और रुपये से भला क्या नहीं हो सकता ? तुम बिलकुल चिन्ता मत करो—रामजी मालिक हैं।" और वे खड़ाऊँ चटकाते मुखारविंद से 'रामजी-रामजी' कहते वहाँ से निकल गये। अपने सोने के कमरे में पहुँचे तो देखा कि वहाँ उनके यहाँ की नई नौजवान बरौनी उनका इन्तज़ार कर रही है।

—:o:—

८

डॉक्टर वर्मा के कम्पाउंडर-दूखनलाल ने अपने मालिक के पास घटना की रिपोर्ट नमक-मिर्च लगाकरपेश करने में एक मिनट की भी देर नहीं की। उसे विश्वास था कि इससे उसे शाबाशी मिलेगी और कुछ तरक़्क़ी भी। दूखनलाल को जो भी फ़ायदा हुआ हो, किन्तु डॉक्टर मधुसूदन को उस घटना के बाद घोर क्षति उठानी पड़ी। धीरे-धीरे सारे शहर में दबी ज़बान में लोग उसके चरित्र की चर्चा करने लगे। अब रामेश्वर सेठजी के यहाँ की इस वारदात की भूमिका पर नर्स सुशीला राजेश्वर का यकायक नौकरी छोड़कर चला जाना भी कुछ अर्थ रखने लगा।

यह सच है कि शहर में उसकी जो लोकप्रियता थी, इसके कारण बहुत कम लोग ऐसे थे जो दरअसल इस लोकापवाद पर विश्वास करते थे। अधिकांश तो यही मानते थे कि यह मिथ्या है और स्वार्थी तथा प्रतिस्पर्धी लोगों द्वारा उड़ाई हुई बात है। फिर भी मनुष्य का स्वाभाव बड़ा विचित्र है। किसी के चरित्र के पतन की चर्चा से उसे हमेशा दिलचस्पी रहती है--भले ही उसका आन्तरिक विश्वास हो कि नहीं, यह झूठ है, ऐसा कदापि नहीं हो सकता, फिर भी उसकी चर्चा करने से एक विकृत प्रकार का सुख मिलता है। व्यक्ति जितना उच्च, जितना चरित्रवान् होता है उसके लांछन की कहानी उतनी ही अधिक प्रिय मालूम पड़ती है, इसलिए यक़ीन न करने के बावजूद शहर भर के लोग इसकी चर्चा करने में बड़ा रस लेते थे।

प्रारंभ में तो सिर्फ़ कुतूहल और विकृत आनन्द ही इन अफ़वाहों के परिणाम में निकले, पर बाद में धीरे-धीरे, पुरुषों में बात ज़रा संगीन-सी हो गई और कुछ ख़ास-ख़ास परिवारों में, जिनका वह फ़ैमिली डॉक्टर था, डॉ० मधुसूदन को टाला जाने लगा। पहले तो यह बात उसके ध्यान में नहीं आई, किन्तु बाद में जब उसे इसका पता चलने लगा तब उसे भीषण दुःख हुआ। स्वाभव से साधु होने के कारण वह लोगों की विकृत मनोवृत्ति की ओर कभी ध्यान ही नहीं देता था। उलटे यह मानकर चलता था कि सब लोग भले ही होते हैं, पर अब यह बढ़ती हुई बदनामी देखकर उसका हृदय व्यथा से भर गया। उसका चेहरा सदैव म्लान रहता है और हँसी तो जैसे सुशीला के साथ ही चली गई।

फिर भी आश्चर्य की बात यह थी कि स्त्रियों के हृदय में उसके प्रति तनिक भी सन्देह या अविश्वास नहीं पैदा हुआ था। डॉ० मधुसूदन को देखकर ही उनका अन्तर्मन उनसे कहता था कि ये सब प्रवाद मिथ्या हैं, उनमें ज़रा भी सत्यांश नहीं है। उन्होंने डॉक्टर को अपने यहाँ रोगी देखने को बुलाने में संकोच नहीं किया; किन्तु जब उनके पुरुषों को—पति, पुत्र या भाइयों को—स्त्रियों की इस भावना का सुराग़ लगा तो उन्होंने डॉक्टर की विज़िट पर सख्त प्रतिबन्ध लगाना शुरू कर दिया। पर लोगों ने बीमार पड़ना तो छोड़ा नहीं, इसलिए मधुसूदन की जगह डॉ० वर्मा को बुलाया जाने लगा। डॉ० वर्मा खुश हुए कि अब फिर उनकी खोई हुई प्रैक्टिस वापस आने लगेगी।

इस वातावरण के कारण डॉ० मधुसूदन का चेहरा हमेशा उदास रहने लगा। उसके सामने तो लोग कुछ नहीं कहते थे, पर उनके व्यवहार में, व्यंग्य में, नेत्र कटाक्ष में कभी-कभी उसे इस दूषित आबोहवा की आभा दीख पड़ती थी, जिससे उसके कोमल हृदय को सख्त ठेस लगती। फिर भी उसने किसी के सामने अपनी

सफ़ाई नहीं दी, अपनी बाजू नहीं रक्खी। लोगों ने कुछ भी कहा हो, किया हो, उसने अपनी ओर से ज़बान नहीं खोली। उसका दृढ़ विश्वास था कि चूँकि यह तूफ़ान सत्य पर आधारित नहीं है, इसलिए वह अपने आप ही निकल जायगा। तब तक तो उसे नियति के सामने सिर झुकाकर ही इन्तज़ार करना चाहिए।

इसी बीच एक छोटी-सी घटना हुई। डॉक्टर को शहर के एक बड़े इंजीनियर साहब के यहाँ उनकी पत्नी को देखने के लिये बुलाया गया। वे बंगाली सज्जन थे और ब्रह्म-समाजी थे। उनकी पत्नी को देखने के लिए जब वह एकान्त में गया तो उन्होंने धीरे से कहा--"डॉक्टर साहब, आपके चरित्र के बारे में ये जो अपवाद फैल रहे हैं, उन पर हम स्त्रियों का रत्ती भर भी विश्वास नहीं है, इसका यक़ीन मानिये।" डॉक्टर ने उसकी ओर देखा तो पाया कि उस सुसंस्कृत नारी की आँखें आदर की भावना से ओत-प्रोत हैं। डॉक्टर इस अनपेक्षित विश्वास प्रदर्शन से पहले तो भौंचक्का हो गया, फिर दूसरे ही क्षण कृतज्ञता से गद्गद हो गया।

उसने केवल फीकी मुस्कराहट से उस उदार-मना नारी के सद्भाव का स्वागत किया, किन्तु उस स्त्री की तीक्ष्ण दृष्टि से यह बात छिपी न रह सकी कि डॉक्टर अपनी आँखों के पानी को रोकने का भगीरथ प्रयत्न कर रहा है।

उसी दिन संध्या को पद्मावती चन्द्रा भी उसके दवाखाने में आकर कह गई कि स्कूल की स्त्री-शिक्षकों में तथा उनकी सखी-सहेलियों में जो चर्चा होती है, उसमें वे कहती रहती हैं कि डॉक्टर पूर्णतया निर्दोष हैं, उनके दोषारोपण की कहानी सर्वथा झूठ है।

उस दिन रात्रि को डॉक्टर जब सोया तो उसे इस सब अकीर्ति के बवंडर में भी एक बड़ा समाधान था कि लोग चाहे जो कहें, जिस नारी जाति की सेवा का उसने आजीवन व्रत लिया है, जिसकी ओर उसने एक बार भी कुदृष्टि से नहीं देखा है, और जिसके

बारे में एक भी कुविचार उसके मन में नहीं उठा है, वही मातृजाति उस पर विश्वास रखती है, उसका आदर करती है। ईश्वर की न्याय-बुद्धि का इससे बढ़कर भला और क्या सबूत मिल सकता है! उस बंगाली इंजीनियर की पत्नी की तथा पद्मावती चन्द्रा की अयाचित एवं अनपेक्षित सहानुभूति पाकर आज उसका हृदय बड़ी भारी हिम्मत का, बड़ी भारी शक्ति का अनुभव कर रहा है। अब उसकी धारणा है कि वह इससे भी बुरे लोकापवादों को, घृणित आक्रमणों को, थुक्का फजीहत को खुशी के साथ बरदाश्त कर लेगा, ठीक उसी तरह, जैसे एक सिद्धान्त के लिये बलि होने वाला शहीद अपने ऊपर किये गये भीषण प्रहारों को हँसकर झेल लेता है।

— :o: —

वर्षा समाप्त हो रही है, शरद ऋतु का आगमन हो रहा है। लोग अपने मकानों की सफ़ेदी-सफ़ाई करके दीवाली के स्वागत की तैयारी कर रहे हैं।

अचानक एक दिन सुबह पोस्टमैन ने आकर एक कपड़े का छोटा-सा पार्सल डॉक्टर मधुसूदन के हाथ में दिया। पते पर भेजने वाले के नाम की जगह लिखा था—सुशीला राजेश्वर! पता नहीं था, पर पोस्ट की छापों से पार्सल बम्बई के जनरल-पोस्ट आफ़िस से रवाना हुआ था, यह स्पष्ट था।

सुशीला का नाम देखते ही डॉक्टर का हृदय विचित्र रीति से एकदम कंपित हो उठा, जिसका असर उसके हाथों पर भी हुआ। उसने काँपते हुए हाथों से उसे खोला, तो देखा—

उसमें सफ़ेद ऊन का चॉकलेट बार्डर लगा हुआ, सुन्दर डिज़ाइन का स्वेटर था, जिस पर रेशम के फीते से एक हरे रंग का प्रेजेन्टेशन कार्ड बँधा हुआ था। उस पर सुशीला के हस्ताक्षर में लिखा था—शीला की ओर से सादर सप्रेम भेंट।

डॉक्टर ने स्वेटर को उलट-पुलट कर देखा तो उसमें अन्दर की तरफ़, उस हिस्से में जो छाती से चिपका रहता है, बेल-बूटे से काढ़ा हुआ था, अंग्रेजी का एक ही अक्षर—'K'

यह देखकर डॉक्टर के हृदय में अपूर्व मधुरिमा छा गई और उसका मन उन पुरानी मीठी स्मृतियों को फिर से दुहराने लगा, जो शीला के प्रेमल-व्यक्तित्व के साथ जुड़ी हुई थीं। उस की इन्कार

कुमारी ... श्रीनगर।

तथा उसके अचानक प्रयाण के बाद आज इस स्नेह-प्रदर्शन का क्या अर्थ है ? उसने अन्दर कोई पत्र खोजने की कोशिश की, पर कुछ न मिला। शीला का फ़िलहाल का पता जानने की कोशिश की, पर वह भी नहीं मिला। मिलता, तो भी क्या होता ? वह स्वयं तो शीला से फिर से सम्पर्क स्थापन करने की कोशिश नहीं करता। एक बार उसने उसके प्रेम की याचना की थी। उसकी अस्वीकृति के बाद वह तो अब अपने आप कभी उस ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेगा।

फिर भी आज की इस भेंट ने उसके हृदय में सुखद ऊर्मियाँ लहरा दीं, इसमें शक नहीं। उसे जो रह-रह कर शीला की याद आ रही थी, उस पर से स्पष्ट था कि वह उस नारी को अपने हृदय से ज़रा भी नहीं निकाल सका है—

और आज की भेंट यह बतलाती है कि वह नारी स्वयं भी तो डॉक्टर को दिल से नहीं निकाल सकी है !

इस अनपेक्षित भेंट का केवल यही अर्थ है कि सुशीला अपने अज्ञात-वास में भी डॉक्टर के प्रति सद्भाव रखती है और वह उसे भूली नहीं है। इस परिज्ञान ने मधुसूदन को कम सुख नहीं पहुँचाया।

उसी दिन शाम को नगर के पटाख़ों के सब से बड़े व्यापारी हाजी अब्बास बारूदवाला की दूकान पर डॉक्टर को एक 'केस' देखने के लिये बुलवाया गया। रोगी को देखने के बाद पान-सुपारी हो रही थी कि अचानक बम फटने के धड़ाके-जैसी आवाज़ हुई और चारों तरफ़ आग की लपटें और धुआँ दिखाई देने लगा। डॉक्टर को लगा कि किसी सख़्त चीज़ ने उसके चेहरे पर आघात किया और उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। एक क्षण उसे लगा कि यह भूकम्प है, पर दूसरे ही क्षण उसने हो-हल्ला सुना कि 'बारूद को आग लग गई, बारूद को आग लग गई !' और बाद

में उसे किसी बात का होश नहीं रहा। उसकी चेतना लोप हो गई और ऐसा लगा कि अब केवल उसी का नहीं, सारी दुनिया का अन्त हो रहा है। जब तक होश रहा तब तक उसे यही ध्यान था कि बस अब मृत्यु आ गई है।

न जाने कितनी देर के बाद जब होश आया तो उसने एक आवाज़ सुनी—

"क्या हाल है, डॉक्टर?"

उसने अपने दिमाग़ को खूब दौड़ाया और बड़े प्रयास के बाद उसे आवाज़ पहचानी-सी तो मालूम हुई, किन्तु वह ठीक-ठीक नहीं कह सका कि वह किसकी है। उसने पूछा—"कौन है?"

"मैं डॉक्टर वर्मा—"

"Oh I see—" कहकर उसने आँखें खोलने का प्रयत्न किया, लेकिन उसने पाया कि वे ऐसी जल रही हैं, मानो उन पर अंगार के शोले रक्खे हों। उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। फिर अपनी असहायता देखकर बोला—"मेरी आँखें इतनी क्यों जल रही हैं? मैं कहाँ हूँ डॉक्टर?"

"आप मेरे ही दवाखाने में हैं। ऐक्सिडेंट में बारूद फटकर आपकी आँखों में जा लगी है," डॉक्टर वर्मा ने कहा। मधुसूदन को लगा कि उसकी वाणी में सोज़ है।

डॉक्टर ने फिर दिमाग़ को कुरेद कर देखा तो कुछ-कुछ याद आया कि वह शाम को हाजी अब्बास बारूदवाला सेठ के यहाँ मरीज़ देखने गया था। वहाँ एक धड़ाका हुआ और बस—फिर कुछ याद नहीं।

'तब शाम थी तो अब रात होगी'—मधुसूदन ने मन-ही-मन सोचा। इसी लिये तो उसे कुछ नहीं दीख रहा है। फिर कुछ देर ठहरकर बोला—"डॉक्टर, आपने लैम्प नहीं जलाया?"

"ज़रूरत? इस वक्त तो दिन के दस बजे हैं न?"

"फिर मुझे क्यों कुछ नहीं दीखता है—आँख पर कुछ रक्खा है ?"

"हाँ डॉक्टर— I Am sorry to say that you have gone stone blind (मुझे अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि आप पूरी तरह अन्धे हो गये हैं।"

"ओह—" एक करुण, दीर्घ, कातर पुकार डॉक्टर मधुसूदन के मुँह से निकल पड़ी। नियति के इस अटल और अपरिवर्त्य प्रहार के सामने वह असहाय हो कर रो उठा और उसकी गर्दन असहायता से तकिये के नीचे खिसककर लटक गई। उसकी आँखों से अविरल अश्रु धाराएँ बहने लगीं और ऐसा प्रतीत हुआ कि वह ज़बरदस्ती अपने क्रन्दन को गले के अन्दर ही दबाना चाहता है, किन्तु वह बाहर उभड़ पड़ने के लिए झगड़ रहा है--

इतने में उसे चूड़ियों की झनझन के साथ-ही-साथ किसी स्त्री की दबी हुई सिसकियों और दूसरे क्षण फूट फूटकर रोने की आवाज़ सुनाई दी। इस अनपेक्षित, अपरिचित क्रन्दन के स्वर को वह पहचान नहीं सका और "कौन है, कौन रो रही है—कौन हैं आप ?" कहकर वह स्वयं भी ज़ोरों से फूट-फूटकर रोने लगा। आज तक वह इस क़दर खुलकर कभी नहीं रोया था; लेकिन आज वह अपना संयम नहीं सँभाल सका। जो क्रन्दन शुरू किया तो फिर उसे रोकने की उसने कोई कोशिश भी नहीं की। हृदय की वेदना का दुःसह्य भार हलका करने के लिये उसने अपनी भावनाओं को बाहर स्वच्छन्दतापूर्वक निकलने दिया। आज उसे इस बात का संकोच नहीं था कि पास ही उसका प्रतिस्पर्द्धी डॉक्टर वर्मा खड़ा है और कोई नारी है, जिसका स्वर तो वह जान नहीं सका, किन्तु जिसके बारे में उसे विश्वास है कि वह भी प्रति-सहानुभूति में क्रन्दन कर रही है। न जाने कितनी देर तक मधुसूदन और वह स्त्री इस तरह रोते रहे—

जब दुख का आवेग कम हुआ तब फिर उसने उस नारी के प्रति मुँह फेरकर अपना प्रश्न दोहराया—"कौन ?"

रुँधे हुए कंठ से उत्तर मिला—"पद्मावती चन्द्रा !"

"बड़ी कृपा है, आप आ गईं। आपके आने भर से मुझे बड़ा सुख मिलता है," उसने कहा।

धीरे-धीरे उसे दुर्घटना की सारी कहानी मालूम हुई। किसी नौकर की असावधानी से बीड़ी का गुल बारूद पर पड़ा। एकदम भयंकर विस्फोट हुआ। उसमें वह नौकर तो वहां भुनकर मर गया, पर डॉक्टर बेहोश हो गया और उसकी आँखें फूट गईं। मुँह की चमड़ी भी कुछ-कुछ जल गई थी, पर ज्यादा नहीं। हाजी सेठ की दाढ़ी और बाल जल गये थे और चेहरा भी। दोनों को पहले सरकारी अस्पताल में दाखिल कराया गया, किन्तु ज्योंही डॉक्टर वर्मा ने यह खबर सुनी तो वह उसे अपने खुद के दवाखाने में लिवा लाया। दो घण्टे में इस दुर्घटना की खबर नगर भर में फैल गई और मधुसूदन का हाल जानने के लिए लोगों का ताँता बँध गया। पद्मा भी भागी भागी आई और तब से छः घण्टे हुए, अभी यहीं बैठी है। खाने-पीने की भी सुध नहीं। आँखों में प्राण लाकर देखती रही कि किसी तरह डॉक्टर इस बेहोशी से उठ जायँ। उसका दिल इस आशंका से धड़क रहा था कि कहीं यह मूर्छावस्था चिर-निद्रा में परिवर्तित न हो जाय।

पर ऐसा नहीं हुआ। डॉक्टर मधुसूदन अन्धा तो हो गया, एक हद तक कुरूप भी हो गया, फिर भी ज़िन्दा बच गया। बस इसी की खुशी में वह फूली नहीं समाती थी।

किन्तु डॉक्टर सोचता—वह क्यों इस दुर्घटना में बच गया ? क्यों नहीं वह भी उस नौकर की तरह वहीं जलकर मर गया ?

एक के बाद एक दुर्भाग्य के तीन कठोर प्रहार उस पर गिरे थे—प्रणय-भंग, अपकीर्ति, दृष्टि और रूप का नाश।

प्रणय-भंग ने हृदय के अन्दर घोर निराशा और अन्धकार फैला दिया था; अपकीर्ति ने बाह्य सामाजिक जीवन में; और अब इस दृष्टि-नाश ने उसके लिए सारे संसार में, जीवन में, अँधेरा-ही अँधेरा छा दिया। हे भगवान्!

वह आज क्या से क्या हो गया!

कल उसका हृदय कितना विशाल, कितना बड़ा और बहादुर था! उसकी लोकप्रियता और सुस्वभाव का कितना बोलबाला था! उसके शरीर में कितनी ताक़त और सौन्दर्य, दिल में कितना आत्म-विश्वास और जीवन में कितनी माधुरी थी! अपने भविष्य के बारे में कितनी उम्मीदें, कितने मनसूबे उसने बाँध रक्खे थे। और वे सब बेकार नहीं थे, उन सपनों के सच्चे साबित होने के आसार भी नज़र आ रहे थे। उसे पूरा विश्वास हो रहा था कि रोग-ग्रस्तों की, विशेषत: स्त्री जाति की सेवा करने का जो व्रत उसने किया था, वह अपने जीवन में सफल कर सकेगा, माँ की इच्छा-पूर्ति कर सकेगा; किन्तु अब—

माँ, मुझे अपने दु:खों की उतनी परवाह नहीं है; लेकिन अब मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन किस तरह कर सकूँगा?..किस तरह?

यदि उसका जीवन-ध्येय सफल हो पाता तो वह अपनी सारी पीड़ाओं को खुशी से बरदाश्त कर लेता; पर वह ध्येय तो एक तरफ़ ही रहा, उसके हाथ में आया यह निकम्मा, परावलम्बित जीवन। कहाँ तो उसकी यह प्रवृत्ति थी कि अपने लिए वह दूसरों को ज़रा-सी भी तकलीफ़ न दे और कहाँ आज की यह दयनीय हालत कि खाना खिलाना तो अलग रहा, शरीर के नित्य कर्म करने के लिए, कपड़े बदलने के लिए, ज़रा-ज़रा-सी बात के लिए उसे दूसरों को कष्ट देना पड़ेगा। अब तक वह दूसरों की सेवा करता था, परिश्रम करता था, इसलिए उसे जीने का हक़ था, लेकिन अब तो औरों को ही उसकी शुश्रूषा करनी होगी और उसके लिए मेहनत

करनी पड़ेगी। इस पराधीन निकम्मे जीवन से तो मरण ही क्या बुरा है ? हाँ, मृत्यु निस्संदेह अच्छी है। तिल-तिल घुल-घुलकर आत्म-वंचित जीवन से तो छुटकारा मिलेगा।

उसने धीरे से पद्मा से एकान्त में कहा—"पद्मा, तुम मुझे चुप-चाप ज़हर क्यों नहीं दे देतीं ?"

"यह आप क्या बात कर रहे हैं, डॉक्टर साहब ! ऐसी अभद्र बात ज़बान पर नहीं लाते।" - उसने व्यथित अन्तःकरण से कहा।

"क्यों नहीं ? इस प्रकार का परावलम्बित जीवन जीने से क्या फ़ायदा ? मैं तो अब दूसरों पर भार ही हो गया हूँ। किसी भी स्वाभिमानी आदमी को ऐसी ज़िन्दगी बरदाश्त नहीं हो सकती।"

"नहीं डॉक्टर साहब, भार क्यों होगी ? आपने लोगों की इतनी सेवा की है, क्या वे आपकी मुसीबत में साथ न देंगे ? आप अपने दिल में ज़रा भी संकोच मत कीजिए—दुनिया में ऐसे भी आदमी हैं, जिनके लिए आप भार नहीं, गौरव हैं !"

"पद्मा !"-केवल कृतज्ञता की एक आर्त पुकार उसके मुँह से निकल पड़ी। उसे रह-रहकर यही लग रहा था कि यह उसका कौन-सा पुण्य था जो इस संकट में पद्मा अपने आप उसके पास चली आई। वैसा उनका सम्बन्ध ही कितना-सा था ? वह सुशीला की पड़ोसिन थी और वह दो एक बार उसके यहाँ मरीज़ देखने गया था, एक बार उसकी माँ को ख़तरे की बीमारी से चंगा किया था, पर ऐसे तो उसने न जाने कितने स्त्री-पुरुषों को चंगा किया था। इसलिए पद्मा की सद्भावना देखकर वह अतीव कृतज्ञ हो उठा। उसने सोचा, आज भी इस भारतवर्ष में स्त्री-जाति की वही पुरानी परम्परा चली आ रही है, जिसके कारण कोई भी दुखी, रोगी वा संकट-ग्रस्त आदमी बिना उनकी सेवा-शुश्रूषा पाये नहीं बच सकता।

उन दोनों में आत्मीयता बढ़ रही थी और सारी औपचारिकता नष्ट हो गई थी। इतने भीषण संकट में भी डॉक्टर मधुसूदन को

लगता था कि वह अकेला नहीं है, परित्यक्त नहीं है।

कुछ देर बाद उसके कानों में पद्मावती चन्द्रा और डॉ० वर्मा के बीच कोई बहस होती-सी सुनाई पड़ी। पद्मा दृढ़ता से कह रही थी—"उनके यहाँ से हटाने लायक होते ही मैं उन्हें अपने घर ले जाऊँगी।" और डॉ० वर्मा कह रहे थे, "वे मेरे सम-व्यवसायी हैं, मैं उन्हें अपने यहाँ ही रक्खूँगा। वे मुझे भार थोड़े ही हैं? हम दोनों अब मिलकर प्रैक्टिस करेंगे – मैं काम करूँगा और वे सलाह देंगे।"

"यह आगे जब होगा तब होगा, लेकिन अभी तो मैं उन्हें घर ही ले जाना चाहती हूँ। आँखें तो अब उन्हें लौटेंगी नहीं, किन्तु जब तक वे चंगे नहीं हो जाते तब तक मैं उन्हें हाथ से नहीं छोड़ूँगी—" उसने तेज़ी से कहा!

डॉ० मधुसूदन ने समझ लिया कि उसी को लेकर यह आपस का वाद-विवाद हो रहा है। डॉ० वर्मा के प्रति भी उसका हृदय एक दम कोमल हो उठा। यूँ उसने कभी वर्मा के लिये कोई बुरी भावना अपने दिल में नहीं रक्खी थी; डॉ० वर्मा ही उसके प्रति ईर्षालु था। वैसे वह स्वभाव से बुरा नहीं था, पर जब उसी के पेट पर मधुसूदन की प्रैक्टिस का वार पड़ा तो वह अपने स्वार्थ से ऊपर न उठ सका। डॉक्टर के चरित्र के बारे में जो बदनामी हुई थी, उसमें उसका अप्रत्यक्ष हाथ भले ही रहा हो, किन्तु शीला के प्रस्थान के लिये वह क़तई ज़िम्मेदार नहीं था। और आज विधि के इस कठोर आघात के बाद तो डॉ० मधुसूदन का दैन्य देखकर उसकी रही-सही कुटिलता भी जाती रही और उसके हृदय में पश्चाताप का प्रादुर्भाव हुआ, मानो अपनी दुर्भावनाओं का प्रायश्चित करने के लिए ही वह डॉक्टर मधुसूदन की सेवा में इतना दत्तचित्त है। अब उसके हृदय में इस विपद्ग्रस्त डॉक्टर के लिये सिवा प्रेम और सहानुभूति के और कोई भावना नहीं है। वह यदि दरअसल

बुरा होता तो इतना ऊँचा उठ भी नहीं सकता था, क्योंकि डॉक्टर मधुसूदन को अपने ही यहाँ रख लेने का उसका प्रस्ताव उसके हृदय से निकला था—बनावटी या दिखावे के लिए नहीं था।

लेकिन पद्मा के स्नेहमय आग्रह के सामने डॉ० वर्मा को झुकना पड़ा और दुर्घटना के आठवें दिन डॉक्टर मधुसूदन ने अपने आप को पद्मावती के आतिथ्य में पाया।

पद्मावती ने उसे अपने पास के उसी ब्लॉक में रक्खा, जिसमें सुशीला रहती थी। जब से वह गई तब से वह ज्यादातर खाली ही रहा। सिर्फ़ एक महीने के लिये एक चाय कम्पनी का मैनेजर आकर ठहरा था।

डॉ० मधुसूदन को उस परिचित मकान के परिचित कमरे में आते ही, न जाने कैसा लगने लगा। विना बतलाये ही वह समझ गया कि यह वही कमरा है, जिसमें सुशीला के साथ उसकी अन्तिम भेंट हुई थी।

डॉक्टर की आँखों तथा चेहरे के घाव अब भर रहे थे और वह पूर्णतया स्वस्थ हो रहा था। चेहरे के बायें हिस्से में जलने के कारण स्याह रंग के दाग़ पड़ गये थे, जो शायद स्थायी हों—इसके कारण उसका सुन्दर चेहरा विकृत हो गया था; पर धीरे-धीरे उसने इस नयी परिस्थिति से भी अपने को एक-रूप बना लिया और विधि के विधान के आगे सिर झुकाकर वह अपने दुर्भाग्य को बहादुरी से सहन करने का प्रयत्न करने लगा।

पद्मा, उसकी माँ तथा भाई-बहन तो उसकी सेवा-शुश्रूषा में कोई कोर-कसर नहीं रखते। स्कूल के समय के अलावा अपना अधिकांश समय वह डाक्टर की शय्या के पास ही बिताती। रात में उसका भाई उसके साथ कमरे में सोता।

एक दिन सन्ध्या को एकाएक डॉक्टर बोल उठा—"सुशीला का यही कमरा था न, पद्मा?"

"हाँ," उसने ज़रा चौंककर जवाब दिया।

"मेरा पलंग भी ठीक उसी जगह है न, जहाँ उसका पलंग था?"

"हाँ —"

फिर दोनों चुप रहे। पद्मा ध्यानपूर्वक उसके चेहरे की तरफ़ यह जानने के लिये देख रही थी कि उसके दिल में क्या बीत रही है।

फिर वह बोला—शीला कहाँ होगी, पद्मा?"

"बम्बई में होगी—क्यों?"

"कुछ नहीं—योंही पूछा।"

"उसे इत्तला देनी है?"

"नहीं तो —" पद्मावती को जो शक था वह ठीक निकला। आज भी डॉक्टर को नित्य सुशीला का ही ध्यान लगा है। दिन और रात उस के मन में उसी के बारे में विचार घूमते रहते हैं।

इसके पाँच दिन बाद अचानक पद्मा ने आकर कहा - डॉक्टर साहब, एक अध्यापिका मैटर्निटी की छुट्टी पर जा रही है, इसलिए स्कूल में मेरा काम बढ़ गया है—मैं अब आपकी सेवा के लिए ज़्यादा समय न दे सकूँगी। आपकी परिचर्या के लिए मैं एक नर्स का इन्तज़ाम कर रही हूँ।"

"नहीं पद्मा, इसकी क्या ज़रूरत है? अब मैं धीरे-धीरे अपना सारा काम अपने हाथ से ही कर लूँगा। हाँ, अटेंडे[illegible] लड़का रख लें तो सारा काम बन जायगा।"

"नहीं, डॉ॰ वर्मा का कहना है कि अभी तीन [illegible] आपको ज़्यादा हिलना-डुलना नहीं चाहिए। अभ्यास की [illegible] के लिए भी तो कुछ समय चाहिए, वरना न जाने कब, कहाँ [illegible] दुर्घटना हो जाय। इसलिए एक नर्स तो रखनी ही होगी।"

"एक शर्त पर मैं मानूँगा, पद्मा!"

"क्या?"

"कि मेरा सारा बैंक अकाउएट तुम्हारे नाम लिख दिया जाय और मेरा सब खर्च उसमें से किया जाय।"

"इसकी क्या ज़रूरत है ?"

"तो फिर मुझे भी नर्स-वर्स की ज़रूरत नहीं"-ऐसा कहकर वह मुँह फेरकर लेट गया।

"अच्छा, नाराज़ मत हूजिए, आप जो कहते हैं, वही होगा," पद्मा ने हँसकर कहा, "आप तो बच्चे जैसा हठ करते हैं!"

पद्मा को डॉक्टर की बाल-सुलभ निर्बोधता देखकर एक क्षण में ही पता लग गया कि सुशीला डॉ० से क्यों इतना प्रेम करती थी।

डॉक्टर का दवाखाना मय मोटर के बेच दिया गया और उससे लगभग सात-आठ हज़ार की रक़म इकट्ठी हो गई। उसने पक्का इरादा भी कर लिया कि सिर्फ़ तीन महीने वह यहाँ रहेगा फिर अपने गाँव श्रीपुर चला जायगा, जहाँ उसके बापू की ज़मीन है। बस, उसी शान्त, वन्य गाँव में ही वह अपनी ज़िन्दगी बिता देगा—उसे अब प्रैक्टिस-वैक्टिस कुछ नहीं करनी है।

एक दिन शाम को पद्मा ने कहा, "कल नर्स आ रही है।"

"कहाँ से ?"—डक्टर ने पूछा।

"नागपुर से।"

"कौन है ?"

"एक ईसाई औरत है। अभागिन है बेचारी। विधवा तो थी, पर अभी दो महीने पहले उसका १५-१६ बरस का इकलौता लड़का भी टायफ़ाइड से मर गया। इसलिए बड़ी दुखिया है—किसी से ज्यादा बोलती-चालती नहीं।"

"ओह!" डॉक्टर का हृदय करुणा से भर गया।

"वह आप से बोले नहीं तो कोई हर्ज नहीं, पर आपका काम बहुत अच्छा कर देगी, इसका मुझे विश्वास है। मेरी नागपुर वाली मौसी ने उसे देख-भालकर तय किया है। आप भी उससे ज्यादा

बात-चीत न करें तो अच्छा होगा—उसका दुःख ताज़ा है, बात की बात में उफ़न पड़ता है।"

"नहीं पद्मा, मैं भला क्यों किसी का दुःख बढ़ाने का कारण बनूँगा ? पर ऐसी नर्स न आती तो अधिक अच्छा होता। वह मेरी सेवा करे, इसके बदले कहीं मुझे ही उसकी सेवा न करनी पड़े !"

"नहीं, शायद ऐसा नहीं होगा। यह तो मैंने सिर्फ़ उसका स्वभाव दर्शाने के लिये कहा।"

पद्मा के कथन के कारण उसके दिल में नर्स के लिये पहले से ही सहानुभूति जाग्रत हो गई, इसलिये वह उसके आगमन की उत्कण्ठा से प्रतीक्षा करने लगा।

—:o:—

Srinagar

"नर्स आ गई डॉक्टर साहब !" पद्मा ने कमरे में आकर इत्तला दी। डॉक्टर ने अपने कान से जान लिया कि पद्मा के साथ एक और स्त्री है, जो शरीर और गठन से पद्मा से बड़ी है। जब से आँखें गई हैं तब से उसके कान बहुत तेज़ हो गये हैं और वह बहुत-सी बातें केवल अनुमान से जान लेता है।

"नाम क्या है ?"

"नाम तो डोरा है, पर आप नर्स ही कहकर पुकारें तो अच्छा"—पद्मा ने कहा।

डॉक्टर नर्स की आवाज़ सुनने के लिये उत्सुक था, पर वह कुछ न बोली। पद्मा ने नर्स को सारी बातें—दवा-पानी, कपड़े-बिछौने की समझा दीं और नहाने-धोने के तथा दीगर स्थान बतला दिये। डॉक्टर चुपचाप पड़ा यह सब सुनता रहा। सब कुछ समझाने-बुझाने के बाद पद्मा चली गई और अब कमरे में सिर्फ़ डॉक्टर और नर्स रह गये।

"नर्स !"– उसने पुकारा।

"यस प्लीज़" एक क्षीण आवाज़ आई।

डॉक्टर कुछ चौंका। यह आवाज़ परिचित-सी मालूम पड़ती है, पर दूसरे ही क्षण उसे लगा कि नहीं यह मिथ्या आभास मात्र होगा।

"तुम आ गईं, बहुत अच्छा हुआ !"

नर्स चुप। क्या वह अपनी भावनाओं को दबाने की कोशिश

कर रही है ?

"मैंने तुम्हारी विपदा की कहानी सुनी है—और मुझे सख्त अफ़सोस है कि तुम्हें किस्मत की यह निर्मम चोट सहनी पड़ी। मैं तुम्हारे लिये कर तो कुछ नहीं सकता, पर इतना विश्वास रक्खो कि मेरे हृदय में तुम्हारे लिये गहरी हमदर्दी है।"

डॉक्टर ने इस बार एक सुदीर्घ निःश्वास सुना।

"तुम नागपुर से आई हो ? वीमेन्स हॉस्पिटल में थीं ? यहाँ तुम्हें अच्छा लगेगा ?—"

"माफ़ कीजिये डॉक्टर, मैं बातचीत करने की मनःस्थिति में नहीं हूँ। जब तक मेरे दुःख का आवेग कम नहीं हो जाता तब तक मैं मौन-सी रहना चाहती हूँ," उसने अंग्रेजी में कहा। डॉक्टर फिर चौंका। यह आवाज़ फिर जानी-सी मालूम हुई; पर यह सोचकर कि ये सब खयाली पुलाव हैं, वह सिर्फ़ इतना ही बोला—सॉरी, मैं समझ गया। अब मैं आपको सवाल पूछकर तंग नहीं करूँगा।"

नर्स के दीर्घ वाष्पोच्छ्वास का स्वर फिर सुनाई दिया और इसके बाद उस मकान में शान्ति छा गई। डॉक्टर काम के दो एक शब्दों के अलावा—जैसे, पानी या चाय माँगना, रूमाल माँगना, इत्यादि—कुछ नहीं बोलता। सिर्फ़ चुपचाप अपने बिस्तर पर लेटा रहता। पर उसका काम बहुत अच्छा होने लगा। सारी चीज़ें बातरतीब वक्त पर मिल जातीं। दवाई लगाने, खाना खाने, पानी पीने आदि की क्रियाएँ बिलकुल घड़ी के मुताबिक निःशब्द और नीरव चलती रहतीं। डॉक्टर ने अनुभव किया कि नर्स के सान्निध्य से उसे अजीब तरह का निगूढ़ सुख मिल रहा है।

उसने कमरे के दरवाज़े में दो स्त्रियों की आपस की दबी ज़बान की फुसफुसाहट सुनी। बोल उठा—"कौन ?"

"मैं हूँ पद्मा!" —पद्मा ने कहा।

"तुम किससे बातचीत कर रही हो ?"

"नर्स से—"

"धीरे क्यों बात करती हो ? मैं सोया थोड़े हीं हूँ ।"

नर्स अन्दर चली गई, तब डॉक्टर ने धीरे से पद्मा से कहा—"नर्स तुम्हारी पहले की परिचित मालूम पड़ती है—"

"हाँ, मेरी मौसी उसे अच्छी तरह जानती है ।"

"ऐसा !"—कुछ सोचकर वह चुप हो रहा ।

रात को सोने के पहले नर्स ने आँखों की पट्टियाँ बदलीं तब उसका हाथ डॉक्टर के हाथ से स्पर्श कर गया । डॉक्टर के शरीर में सिहरन लहरा उठी । उसे आश्चर्य हुआ कि ऐसा क्यों हुआ ! इसके पहले पद्मा ने तो कई बार पट्टियाँ बदली थीं और उसके व्यवसाय के दौरान में भी उसे कई स्त्रियों को स्पर्श करना पड़ा था; पर उसे यह अनुभव तो कभी नहीं हुआ था । बात क्या है ?

अचानक रात में उसकी नींद खुली तो मधुसूदन को लगा कि कोई उसके पलंग के सिरहाने खड़ा है । वह कुछ कम्पित स्वर में बोल उठा—"कौन है, नर्स ?"

"हूँ !"

"तुम अब तक सोई नहीं ? जाओ, सो जाओ ! अब मुझे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है । कितने बजे हैं ?"

"बारह ।"

"जाओ, सो रहो—"

बग़ल के कमरे में नर्स के जाने की आवाज़ सुनाई दी । पन्द्रह मिनट बाद दूर पुलिस स्टेशन के घण्टे सुनाई दिये—टन-टन—दो ।

डॉक्टर को ताज्जुब हुआ कि नर्स ने समय ग़लत क्यों बतलाया । क्या वह चार घण्टे से यों ही सिरहाने खड़ी थी ? तबीयत हुई कि उसे बुलाकर पूछे, लेकिन उसकी पलंग पर लेटने की आवाज़ आई,

इसलिए उसे कष्ट देना उचित न जान वह चुपचाप पड़ा रहा; पर उसका दिमाग़ शान्त नहीं था।

आज दिन भर उसे सुशीला की ही याद सताती रही। नर्स की वाणी सुनकर पहली बार उसकी यह स्मृति जाग्रत हुई और रात को जब उसके हाथ का स्पर्श हुआ तब फिर वह दृढ़ हुई। नर्स का उसके पलंग के पास खड़े होकर जागना उसे अजीब-सा लगा। इन सब बातों ने उसके हृदय को तेज़ी से आन्दोलित कर दिया। आवाज़ तो उसे सुशीला जैसी लगी, पर उसने यह भी सोचा कि एक ही सी आवाज़ शायद दो स्त्रियों की हो सकती है। सुशीला यहाँ क्यों आयगी ? वह तो चली गई—उसके जीवन से सदा के लिये।

उसे एक घण्टे के बाद नींद आ गई, लेकिन स्वप्न आये तो सुशीला ही के बारे में। उसने सपने में देखा कि वही बारूद का विस्फोट हुआ और उसके बाद चारों ओर घनघोर अँधेरा छा गया। वह घबड़ा गया, किन्तु उसे लगा कि आसमान में से एक प्रकाश-मान तारा उतर रहा है, जो नज़दीक आकर एक स्त्री का रूप लेने लगा। जब उसने उसका चेहरा देखा तो पहचान लिया और ज़ोर से पुकार उठा—शीला !

और अपनी ही पुकार सुनकर उसकी नींद खुल गई—उसने सुना कि बग़ल के कमरे में नर्स पलंग पर से हड़-बड़ाकर उठ बैठी और एकदम तेज़ी से मधुसूदन के पास आकर खड़ी हो गई।

डॉक्टर ने गर्दन उठाकर पूछा—"कौन है...शीला ?"

"नर्स !" उसने स्थिरता से कहा।

"ओफ़ !" निराश होकर डॉक्टर ने तकिये पर अपनी गर्दन डाल दी। "सॉरी, मुझे सपना हुआ था !"

नर्स ने एक गिलास पानी लाकर पिला दिया और वह फिर से सोने चली गई।

दूसरे दिन जब पद्मा आई तो डॉक्टर ने उससे मौक़ा पाकर पूछा—"पद्मा, यह नर्स क्या शीला के समान दीखती है ?"

"हाँ, शायद—कुछ-कुछ ।"

"रंग कैसा है ?"

"रंग में तो सुशीला से गोरी है ।"

"ओह !" उसके मुँह से निराशा का उद्गार निकला। कुछ देर ठहरकर बोला—"क्या उसकी चिबुक पर काला तिल है ?"

"हर स्त्री की चिबुक पर तिल थोड़े ही होता है !"

"पद्मा, उसकी आवाज़ तो शीला जैसी लगती है !"

"बहुत थोड़ी ! पर क्या एक ही सी आवाज़ की दो औरतें नहीं होतीं ? जिन स्त्रियों के जीवन पर दुःख का कुठाराघात होता है, उनकी आवाज इसी तरह भारी हो जाती है !"

"हाँ, शायद ऐसा ही है ।" कहकर वह फिर कुछ सोचने लगा।

पद्मा ने उसके चेहरे की तरफ़ देखा तो उसे लगा कि उसके मन में घोर द्वन्द्व चला हुआ है।

"पद्मा !"—फिर उसने पुकारा।

"क्या ?"

"शीला कहाँ होगी ?"

"कहा न कि बम्बई में होगी ।"

"कैसे जाना कि बम्बई में होगी—पता मालूम है ?"

"बम्बई से आई थी इसलिये वहीं गई होगी—मुझे पता क्योंकर मालूम होगा ? होगा तो आप ही को मालूम होगा ।"

"नहीं मुझे भी नहीं मालूम—"

फिर दोनों मौन रहे। थोड़ी देर ठहर कर डॉक्टर ने फिर पूछा—"क्या तुम अनुमान कर सकती हो कि किसी कारण-वश शीला यहाँ आई होगी ?"

"कब ?"

"अभी—"

"अभी कैसे आई होगी ! आती तो आपसे नहीं मिलती ? मुझसे नहीं मिलती ?"

"मुझसे तो शायद नाराज़ होकर चली गई है—" उसने घोर उदासीनता से कहा, "पर हाँ ! तुमसे ज़रूर मिलती, तुम्हारे सिवा यहाँ उसकी मित्रता और किसी से नहीं थी।"

"क्यों, उसे बुलाना चाहते हैं ?"

"नहीं नहीं—" वह तुरन्त बोल उठा। प्रश्न इस तरह सीधा पूछा जायगा, ऐसी उसकी कल्पना नहीं थी। "वह तो अपने आप ही यहाँ से चली गई है, फिर हम उसे कैसे बुला सकते हैं ?"

पद्मावती कुछ न बोली। थोड़ी देर बाद यह कहकर कि स्कूल का वक्त हो रहा है, वह चली गई। मधुसूदन दीवाल की तरफ़ करवट लेकर लेट गया।

उसके दिमाग़ में घोर उथल-पुथल मच गई। इस नर्स के बारे में वह जो भी धारणाएँ बना सका है, उससे यह शीला जैसी तो मालूम पड़ती है; शीला न हो तब भी उसकी वाणी, व्यवहार और स्पर्श तो उसी के बारे में सारी स्मृतियाँ जगाते हैं। आभास शीला का ही है, पर व्यक्तित्व नर्स डोरा का मालूम पड़ता है। शीला तो बम्बई में होगी, वह भला क्यों आने चली ? जो स्त्री जान-बूझकर चली गई और जिसके व्यक्तित्व की परिणति मेरे सान्निध्य में नहीं हो सकती, वह क्यों फिर लौटकर आयगी ? नहीं, यह शीला तो हो नहीं सकती। पद्मा ज़रूर बता देती—वह ऐसा छल क्यों करने लगी ?

किन्तु वह यदि उस समय पास होती तो ?

ओह, कितना अच्छा होता ! वह कीर्त्तिनाश, दृष्टिनाश आदि के कारण छिन्न-विछिन्न हुए जीवन को भी सँभाल सकता और इस निविड़ निशीथ के घोर तिमिर में भी पूर्णिमा के चन्द्र का प्रकाश

अनुभव करता।

पर इस सुन्दर कल्पना का स्वप्न देखना भी अपने जीवन को अधिक दुखी बना लेना है। जो वस्तु अप्राप्य है, पहुँच के परे है, उसको पाने की अभिलाषा करना मूर्खता है मृग-जल के पीछे भागने जैसा व्यर्थ प्रयास है, जिसका पर्यवसान घोर निराशा के सिवा और कुछ नहीं हो सकता।

नहीं, उस विचार को छोड़ ही देना होगा।

किन्तु केवल छोड़ देना कहने ही से हृदय की भावनाएँ छूट तो जाती नहीं। अजीब बात तो यह है कि जितना उन्हें दबाओ, उतना ही वे उमड़ पड़ने के लिये लालायित रहती हैं।

कितनी भी कोशिश करे—मधुसूदन शीला को नहीं भूल सका है।

"नर्स !"—उसने पुकारा, "ठण्ड लग रही है, कुछ पहनने को देना !" नर्स ने उसका ऊलन कोट और मफ़लर ला दिया।

"नहीं, आज यह नहीं चाहिये। वह चमड़े का बक्स है न, उसमें कपड़े के पैकिंग में एक सफ़ेद ऊन का स्वेटर है, जिसमें चॉकलेट रंग की बॉर्डर है—वही निकाल दो !"

नर्स ने सन्दूक खोलकर पैकिंग बाहर निकाला—

"देखो नर्स, उसमें जो प्रेज़ेंटेशन कार्ड है न, उसे तथा उसकी रेशम की डोरी को ज़रा सावधानी से रखना और ऊपर का पैकिंग भी। डोरी काटना मत, उसकी गाँठ हाथ से धीरे से खोल लेना !"

नर्स ने स्वेटर लाकर हाथ में दे दिया।

मधुसूदन बड़ी देर तक उसे हाथ में लिये, छाती से लगाये, चुपचाप पड़ा रहा। क्या उसके सामने मीठी स्मृतियों का ख़ज़ाना खुल पड़ा था ?

फिर स्वेटर को उलटाया और हाथ की उँगलियों से टटोलकर नर्स को बतलाया—"यह S लिखा है न ?"

"हूँ ।"

"यही स्वेटर शीला का बनाया हुआ है।" उसने नर्स की ओर मुँह करके अभिमान से कहा।

नर्स कुछ न बोली।

कुछ देर के बाद बोला—"लो, इसे पहना दो।"

नर्स नजदीक आई। मधुसूदन ने देखा की उसके निःश्वास उष्ण और गहरे थे। उसकी भावनाएँ चालित हो गई हैं, ऐसा जान पड़ा।

जिस समय वह स्वेटर पहना रही थी तो मधुसूदन को उस बरसाती रात्रि की घटना याद आई जब वह पिता की मृत्यु के बाद गाँव से लौटा था और उस दिन उसके बँगले में इसी तरह शीला ने उसके कपड़े बदले थे। आज के पहनाने वाले हाथों में वही ममता, वही आस्था दिखाई पड़ती थी।

डाक्टर का शरीर कम्पायमान हो गया। ज्योंही नर्स स्वेटर के गले में डाक्टर का सिर डालने के लिए झुकी तो उसके श्वासो-छ्वास मधुसूदन की नाक में भर गये और वह सिहर उठा। पागल की तरह उसका हाथ झटके से पकड़कर पुकार उठा—"शीला! शीला!"

नर्स कुछ न बोली—हाथ छुड़ाने की कोशिश करने लगी कि मधुसूदन ने अनुभव किया, उसके कपाल पर आवप्त जल की दो बूँदें टपक पड़ीं।

"नर्स, क्या तुम शीला ही हो?"—वह आर्त एवं व्यथित अन्तःकरण से पूछ बैठा।

"नो, डाक्टर!" उसने धीमे से अपने आपको छुड़ाते हुए कहा।

"तुम रोई क्यों?"

"मुझे अपने बेटे की याद आ गई, जिसको मैं इसी तरह कपड़े पहनाया करती थी—" उसने भरे हुए गले से अंग्रेजी में कहा।

"ओह ! I am sorry nurse ! मुझे क्षमा करना जो मैं इतना वह गया।"—और उसने हताश होकर गर्दन नीचे डाल दी। उसकी मुँदी हुई आँखों में से जल की धाराएँ निकल रही थीं। उसने सुना, नर्स तेज़ी से कमरे में से निकल गई।

—:o:—

डॉक्टर वर्मा मोटर में आये और मधुसूदन की आँखों की परीक्षा करने के लिये उसे अपने दवाखाने में ले गये। नर्स नहीं गई। कहा, "इस बीच बिछौना और कमरा साफ़ करके रख दूँगी।" पद्मा का भाई साथ गया।

ज्योंही मोटर रवाना हो गई त्योंही पद्मा मधुसूदन के कमरे में आई। उसे देखते ही नर्स ने कहा—"अब यह अभिनय मुझसे नहीं होगा पद्मा! उनकी मानसिक व्यथा और उत्पीड़न देखा नहीं जाता।"

"तीन दिन में ही घबड़ा गईं सुशीला दीदी! मैंने तो पहले ही कहा था कि काम मुश्किल है। ख़ैर, तुम्हारी क्या राय हुई?"

"उन्हें जबरदस्त शक तो है, किन्तु मेरे उस जाने को वे अन्तिम एवं अपरिवर्त्य सत्य मानते हैं। इसलिये मेरी उपस्थिति के सतत आभास के बाद भी वे विश्वास नहीं कर पाते कि मैं ही उनकी शीला हूँ।

"उनके हृदय की भावनाएँ कैसी दिखीं?"

"अत्यन्त उत्कट और गहरी। वे मुझे बिलकुल नहीं भूले हैं और न कभी भूल सकेंगे। क़दम-क़दम पर, बात-बात में, वे मेरी याद करते रहते हैं और यह सोचकर कि मैं शीला नहीं हूँ, हताश हो जाते हैं। इस तरह उनके दिमाग़ पर जो मानसिक दबाव पड़ रहा है, उससे नुक़सान भी हो सकता है। उनकी दीनता और असहायता देखकर तो छाती फट जाती है पद्मा!"

"तो तुम जो देखना चाहती थीं सो देख लिया ?"

"हाँ पद्मा, मैंने देख लिया कि उन्होंने मुझे दिल से नहीं उतारा है, वरन् उनके हृदय में मेरा आसन अधिक स्थिर और दृढ़ हो गया है।"

"अब तुम्हारा इरादा क्या है बहन ?"

"यही कि मैं अब अपने असली स्वरूप में उनके सामने आ जाऊँ और उन्हें विश्वास दिलाऊँ कि मैं उनकी ही होकर रहूँगी।"

"बहन एक बात कहती हूँ, क्षमा करना। कहीं प्रेम की जगह तुम्हारे मन में उनकी दयनीय स्थिति के लिये करुणा तो नहीं है ? करुणा कोई स्वाभिमानी पुरुष नहीं चाहेगा और उससे तुम्हें भी स्थायी सुख नहीं मिलेगा।"

"मैं समझती हूँ पद्मा, अपनी भावनाओं को बिलकुल ठीक-ठीक जानती हूँ। आज उनकी हालत देखकर कोई स्त्री उनके पास रहना नहीं चाहेगी। दुनिया उन्हें परित्यक्त करेगी, किन्तु मैं नहीं छोड़ूँगी। उन्हें मेरी ज़रूरत है और अब जीवन-भर रहेगी।"

"तो क्या तुम उनकी ज़रूरत के कारण उनको स्वीकार करोगी ?"

"नहीं पद्मा, ज़रूरत मेरी अपनी भी है। बम्बई जाकर मैंने देख लिया कि उनके बिना मैं ज़िन्दा नहीं रह सकती। दो बार तो आत्म-हत्या के विचार आये, पर माँ की तरफ़ देखकर उन्हें आश्रय न दिया। यह दुर्घटना तो मानो शाप के रूप में वरदान साबित हुई। तुम्हारा पत्र आते ही मुझे यह तय करने में एक मिनट भी न लगा कि मेरा स्थान उनके पास है और अब सदा रहेगा। मुझे शक था, उनकी भावनाओं के बारे में, कि क्या उनके मन में मेरी अस्वीकृति के बाद कोई कटुता तो नहीं आई, पर मुझे यक़ीन हो गया कि कटुता आना तो दूर रहा, उलटे इस अनपेक्षित दुख-भोग के कारण वे भावनाएँ अधिक मीठी, अधिक उत्कट बन गई

हैं। बस, मुझे अब और कुछ नहीं चाहिये।"

"ज़रा ठीक सोच लो बहन !" पद्मा ने अपनी शरारत भरी मुस्कराहट को दबाते हुए कहा, "इस तरह अन्धे, कुरूप, ग़रीब आदमी के साथ ज़िन्दगी बाँध लेना आसान नहीं—"

"चलरी नकटी, मुझ जैसी बुढ़िया की तो क्या बात, तेरी जैसी तरुण और सुन्दर लड़की भी ऐसे पुरुष के हृदय को देखकर उस पर फ़िदा हो जायगी—" सुशीला ने उसके गाल नोचते हुए कहा और दोनों सहेलियाँ हँस पड़ीं। उस हँसी में भी शीला ने देखा कि पद्मा की आँखों की कोरें गीली हो गई हैं।

पद्मा को आश्चर्य हुआ कि शीला उसके गोप्य को कैसे जान गई ! जो भावना उसके हृदय में उठी थी, उसे ज़बान से व्यक्त करना तो दूर रहा, मन में विचारना भी नहीं चाहती थी, किन्तु आज शीला ने क्योंकर उसकी अन्तरतम भावनाओं की ओर निर्देश किया ? क्या इसीलिये नहीं कि वह भी नारी है, प्रणय-दग्ध प्रेयसी है और दूसरी नारी के हृदय को सही समझ सकती है ?

इतने में डॉ० वर्मा की मोटर का भोंपू सुनाई दिया और पद्मा आँख को आँचल लगाती हुई वहाँ से द्रुत गति से चली गई।

--:o:--

दवाखाने से लौटने के बाद सुशीला ने डॉक्टर को खाना खिलाकर सुला दिया और जब उसकी नींद लगी तब वह भी आराम करने अपने कमरे में जा लेटी। उसके दिमाग़ के सामने पिछले कुछ महीनों की घटनाएँ आ खड़ी हुईं—

डॉ० मधुसूदन का विवाह-प्रस्ताव वह स्वीकार न कर सकी, क्योंकि उसकी धारणा थी कि वह उससे भी अधिक योग्य और सुन्दर युवती का प्रेम पा सकता है और इस अस्वीकृति के बाद जो असह्य वातावरण उन दोनों के बीच उत्पन्न हो गया था, और उन दोनों को लेकर जो लोकापवाद उठने लगे थे, उनसे मुक्ति पाने के लिये वह एकाएक नौकरी छोड़कर बम्बई चली गई।

किन्तु वहाँ उसका मन किसी काम में नहीं लगा। एक पारसी डॉ० के नर्सिङ्ग होम में उसे जगह तो मिल गई और खाने-कमाने की चिन्ता नहीं रही, किन्तु केवल इसी पर तो ज़िन्दगी का सुख अवलम्बित रहता नहीं! जिस पर रहता है, वह चीज़ तो उसके हाथ में आकर भी चली गई—उसने अपने हाथ से खो दी थी। अब वह उसके लिये कितना ही ज़ार-ज़ार रोये, पर वह अपने आप कैसे उसके हाथ में वापस आयेगी?

कई बार उसको पद्मा के साथ हुई अन्तिम बातचीत का स्मरण आया और उसे लगा कि कहीं दरअसल उसने भयंकर ग़लती तो नहीं की है। ज्यों-ज्यों समय गुज़रता गया त्यों-त्यों उसका हृदय-मंथन भीषणतर होता गया और वह भगवान से प्रार्थना करने लगी

कि उसके जीवन की यह विचित्र गुत्थी सुलझ जाय और उसे ठीक-ठीक पथ दीख पड़े।

निराशा के आघात के कारण उसे दो एक बार लगा भी कि जीवन असार है, असत्य है, क्यों न उसका अन्त ही किया जाय?

इतने में उसे पद्मा का पत्र आया, जिसमें डॉ० मधुसूदन की दुर्घटना का विस्तृत वर्णन था और यह भी लिखा था कि डॉक्टर ने दो एक बार उसकी—सुशीला की—याद की थी।

बस, इतना उसके लिए काफ़ी था। उसने फ़ौरन डॉ० मधुसूदन की रुग्ण-शैय्या के पास जाने का इरादा कर लिया और वैसा पत्र पद्मा को लिखा।

उसके मन में एक ही शंका थी जिसका निवारण वह करना चाहती थी—आया उसके प्रति डॉ० मधुसूदन की भावनाओं में कोई परिवर्तन हुआ है या नहीं। यदि वे वैसी ही हैं जैसी पहले थीं तो फिर उसका मार्ग तय है— वह ज़िन्दगी भर उसका साथ देगी। उसकी इस दुरावस्था में, ग़रीबी और अंधेपन में, अब कोई योग्य स्त्री सहसा विवाह करने आगे नहीं आयगी, और आ भी जाय तो डॉक्टर स्वयं उसके जीवन को 'बर्बाद' करने के लिए राज़ी न होगा। वह डॉक्टर के मन को जानती है—

इसलिए अब उसका स्थान उसी के निकट है। उसे अब अपने तईं मधुसूदन को सम्पूर्ण समर्पण कर देने में कोई संकोच नहीं, कोई हिचक नहीं। वह डॉक्टर की शारीरिक सौन्दर्य-सम्पत्ति या कीर्ति की भोक्ता नहीं थी। जिस वस्तु की भोक्ता थी, वह थी उसकी आत्मा का अतुल, असीम सौन्दर्य! वह इन सारी घटनाओं के बाद भी अक्षुण्ण है, इसका उसे पूरा-पूरा विश्वास है। उन दोनों के बीच असमता की जो खाई थी, वह भर गई है और अब उन दोनों का जो मिलन होगा, वह सच्चा, स्वर्गीय एवं सात्विक सम्बंध होगा। इस दिव्य प्रेम में जो आनन्द है, वह इस विश्व में और

कहाँ मिलेगा ?

उसे अपनी ओर से निर्णय करने में ज़रा भी देर न लगी। डॉक्टर ने अपने सुदिनों में उससे प्रणय-याचना करके अपने हृदय के अपरिमेय सौन्दर्य का परिचय दिया था, आज वह स्वयं उसके दुर्दिनों में उससे यही प्रणय-याचना करेगी। यदि आज डॉक्टर मधुसूदन का वही भाव जीवित है तो फिर वह किसी भी कारण से नहीं रुकेगी—अपने निर्धारित पथ पर अवश्यमेव अग्रसर होगी।

बस, उसी भाव को जानने के लिए उसने यह नाटक किया। डोरा नामक क्रिश्चियन नर्स का रूप लेकर वह रंग-भूमि में उतरी, अपनी आवाज़ बदलने की कोशिश की, पर इसमें ज्यादा सफलता नहीं मिली। पद्मा इस नाटक में सहभागी थी ही; पर तीन दिन से अधिक वह अपना अभिनय नहीं चला सकी। जिस बात का यक़ीन चाहती थी, वह उसे पूरी तरह हो गया। अब वह अपने असली स्वरूप में डॉक्टर के सामने उपस्थित हो जाना चाहती थी। मधुसूदन की दारुण अन्तर्व्यथा अब उससे नहीं देखी जाती थी।

किन्तु डॉक्टर को इस सब छद्म का कोई ध्यान नहीं। उसकी मानसिक व्यथा की कोई सीमा नहीं थी। शीला उसके व्यक्तित्व के कण-कण में व्याप्त थी और यह डोरा नामक ईसाई नर्स भी उस परिव्याप्ति का पोषण ही करती थी; किन्तु असल में वह शीला नहीं थी—शीला आज भी उससे दूर, बम्बई या कर्नाटक में रूठकर चली गई है।

कितना सौभाग्य हो, यदि यही नर्स शीला होती !

वह शीला-सी दीखती तो है, पर है नहीं !

कितनी बार डॉक्टर ने ईश्वर से मन-ही-मन प्रार्थना की कि एक बार तो कम-से-कम मुझे सिर्फ़ एक मिनट के लिए ही मेरी दृष्टि लौटा दो, ताकि मैं स्वयं अपनी आँखों से देख सकूँ कि यह मेरी शीला है या नहीं !

शीला ! शीला ! शीला !

उसी का ध्यान, उसी का चिन्तन, उसी की पूजा। वह यदि आ जाय तो इस दुर्भाग्य में भी सौभाग्य जगमगा उठे !

दिन भर और रात भर प्रत्येक जाग्रत घड़ी में--उसके दिमाग़ में इसी प्रकार के विचार ताण्डव-नृत्य किया करते थे। उस स्वेटर वाली घटना के बाद तो उसके मन की अवस्था अधिक नाज़ुक, अधिक कठिन हो गई थी।

मस्तिष्क को यह भार सहन न हुआ और रात को खाना खाने के बाद जब वह सोने की तैयारी करने लगा तो उसे घण्टों नींद नहीं आई। पाँच-पाँच मिनट में वह करवटें बदलता था और उसके मुँह से बीच-बीच में गहरे निश्वासें निकला करते थे। ग्यारह बजे रात को पुकार उठा— "नर्स सिर दर्द कर रहा है, कुछ लगाने को है ?"

सुशीला अमृतांजन की शीशी लेकर पलंग पर मधुसूदन के सिरहाने बैठ गई और उसके कपाल पर उसे धीरे-धीरे मलने लगी।

"नर्स, तुमको मेरे कारण बहुत तकलीफ़ हो रही है, पर मैं किन शब्दों में कहूँ कि मुझे कितना आराम मिल रहा है !"

"Don't Worry," कहकर सुशीला ने उसका सिर धीरे से अपनी गोद में ले लिया और सिर दबाती रही।

डॉक्टर ने अतीव सुख-मग्न होकर अपना सिर उसकी गोद में दे दिया—

"नर्स, तुम्हारी ममता देखकर मुझे शीला की याद आती है। जानती हो शीला कौन है ? वह मेरी नर्स थी, नर्स ही क्या, सब कुछ थी; पर अब तो वह चली गई—"

"कहाँ ?" सुशीला ने पूछा।

डॉक्टर चौंक उठा और एक क्षण के लिए उसकी मुँदी हुई आँखें सुशीला की तरफ़ उठीं। वह बोला—"नर्स, तुम्हारी आवाज़

बिलकुल उसी की तरह है और...और..."

"और क्या ?"

"और यह बर्ताव-व्यवहार, स्नेह-ममता...!"

"तो वह क्यों चली गई ?"

"मैंने उसकी प्रीति की याचना की थी, किन्तु वह न दे सकी, इसलिये-- "

"आप उससे अभी भी प्रेम करते हैं ?"

"मेरा प्रेम तो कभी शिथिल हुआ नहीं।"

"अब वह आ जाय तो उसे स्वीकार कर लेंगे ?"

"वह क्यों आने चली ?"

"मान लीजिये कि आगई, तब ?"

"ऐसा मेरा सौभाग्य कहाँ ? आज भी वह आ जाय तो मैं इस सारी विपत्ति को, दुर्भाग्य को एक क्षण में ही भूल जाऊँगा। उसके कारण तो मेरा जीवन सुख और आनंद से आलोकित हो उठेगा, पर यह तो दुराशा मात्र है !"—उसने एक दीर्घ वाष्पोच्छ्वास लेकर कहा।

फिर थोड़ी देर ठहरकर बोला--"नर्स, तुम जानती नहीं उसका हृदय कितना सुन्दर, कितना विशाल है ! स्त्रियों में वह रत्न थी। दुनिया ने उसके मूल्य को पहचाना नहीं, वह बेचारी बड़ी दुखिया थी। मैं उसे तनिक भी सुख दे पाता तो धन्य हो जाता, पर ईश्वर को यह मंजूर न था—" फिर एक निःश्वास।

भावावेग के कारण वह रुक गया। फिर कुछ देर के बाद बोला, "नर्स ! वह मुझसे कितनी ऊँची, कितनी महान् थी ! मुझे उसमें अपनी माता की प्रतिमा दीखती थी। वही एक मात्र स्त्री है, जो मेरी मित्र, प्रेयसी और माता बन सकती थी—ऐसी संगिनी प्राप्त करने के लिये जन्म-जन्मान्तर का संचित पुण्य लगता है ! नर्स, मुझ जैसे मानव का यह सौभाग्य कहाँ ?"

मधुसूदन ने अनुभव किया कि जिस नारी की गोद में उसका सिर था, वह पैर से सिर तक सिहर उठी। दूसरे ही क्षण उसने पाया कि नर्स ने उसका सिर उठाकर अपनी छाती से ज़ोरों से सिमटा लिया है।

अचानक उसके मस्तक पर गरम पानी की बूँदे टप-से आ पड़ीं, जिनकी उष्णता ने उसके सारे शरीर में एक बिजली-सी दौड़ा दी। फिर उसने एक दबी हुई सिसकी के विस्फोट की आवाज़ सुनी।

"नर्स—क्या हो गया तुम्हें ?"

डॉक्टर मधुसूदन के कानों पर रुँधे हुए कंठ से निकली हुई अत्यन्त स्निग्ध पुकार आई—

"मधुसूदन !"

"कौन है ? शीला !"-उसने हड़बड़ाकर पूछा।

"हाँ, मैं ही हूँ !"

"तुम ! शीला ! सच में तुम्हीं हो—सच कहो ! मैं अन्धा हूँ, देख नहीं सकता, इसलिये मुझसे छल मत करो—सच बताओ !"

"हाँ मधु, सच कहती हूँ, मैं शीला ही हूँ !"—उसने डॉक्टर को अपने बाहु-पाशों में जकड़कर तथा उसके मस्तक का अत्यन्त आवेग के साथ चुम्बन लेते हुए कहा।

"ओह, शीला ! मेरी शीला ? हे ईश्वर -" कहकर डॉक्टर उससे लिपट गया। उसकी आँखों से अव्याहत अश्रु की धाराएँ बहने लगीं। आगे वह कुछ न बोल सका —

शीला भी अब अपने सारे बंधन को छोड़कर फूट-फूटकर रोने लगी।

आज इन दोनों हृदयों के आँसुओं का पारावार नहीं। अश्रु की एक बाढ़ निकली नहीं कि दूसरी आई। फिर वह प्रवाह आवेग से बह निकला। रह-रहकर उन्हें रुदन के दौर आते थे। न जाने

इस तरह कितनी देर तक उनकी आँखों से अश्रु-वर्षा होती रही।

आज इन दो बिछुड़े हुए प्रेमियों का मिलन दिन था।

ये प्रेमी भी कैसे ?—एक अन्धा, कुरूप, ग़रीब, परावलम्बी पुरुष, जिसका संसार में कोई नहीं, और दूसरी गत-यौवना, असुन्दर प्रौढ़ा स्त्री, जिसकी ओर किसी भी पुरुष ने आँख उठाकर देखा तक नहीं।

किन्तु दोनों के हृदय कितने सुन्दर थे, कितने मंगल ! किन उच्च तत्वों के वे बने थे !—जैसे ईश्वर ने अपनी खुदाई इन्हीं में उँडेल दी हो ! आश्चर्य नहीं जो वे जाति, प्रान्त और अन्तर की बाधाओं को लाँघकर, एक-दूसरे को खोजकर, एक दूसरे में विलीन हो गये—एकाकार हो गये—

दो जीवों का द्वैत नष्ट हो गया—अद्वैत शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। दो शरीरों में एक ही प्राण संचारित हो उठे, विश्व का परम मांगल्य इन दो संयुक्त-मानवों में उतर आया।

शीला और मधुसूदन ! मधुसूदन और शीला !

आज रात्रि भी उनके लिये छोटी है ! उनके परम सुख को समाने के लिये विश्व भी छोटा है।

—:०:—

३ : सन्ध्या

सुदूर योरप में लड़ाई शुरू हो गई थी, किन्तु मध्य प्रान्त का यह वन्य-प्रदेश अभी उस घटना से एकदम अप्रभावित था। उसका साधारण जीवन पूर्ववत् शांति के साथ चला जा रहा था।

देवगढ़ की पहाड़ियों के आस पास का यह सुन्दर प्रदेश, जो दक्षिण में कन्हान नदी के कछार तक दौड़ लगाता है, अब तक जन-जीवन के कोलाहल से अछूता है। वहाँ आज भी पश्चिमी सभ्यता के दूत, यानी कोयले की खानें, फैक्टरियाँ या यातायात के बड़े-बड़े साधन नहीं पहुँच पाये थे। एक छोटी, सँकरी रेलवे लाइन और एक छोटी-सी पक्की सड़क दूर से इस प्रदेश को छू जाती है और कभी भूले-भटके एकाध मोटर लॉरी के भोंपू की, या रेल की सीटी की आवाज़ उस शान्त प्रदेश में कुछ क्षणों के लिये गूँज उठती, वरना प्रकृति के सौन्दर्य से ओत-प्रोत यह टुकड़ा शांत और आत्म-मग्न ही बना रहता।

एक ज़माना था जब कि यह प्रदेश इस प्रान्त में, यानी गोंडवाना में बहुत महत्व रखता था। वहाँ गोंडों के गतकालीन वैभव के कई अवशेष दिखाई पड़ते हैं। इन टूटे हुए क़िलों व खँडहरों को जिह्वा होती तो न जाने वे अपने गत-वैभव के सुख-दुख की, बीते उज्ज्वल दिनों की कौन-सी कहानी कह सुनाते ?''

सन्ध्या बीत चुकी थी। घने जंगल में यूँ ही अन्धकार रहता है, इसलिये बहुत जल्द ही वहाँ निशा का साम्राज्य फैल जाता है। कृष्णपक्ष की रात थी, इसलिये आकाश के नक्षत्रों के सिवा और

किसी का सहारा नहीं था।

ऐसे समय उस जंगल की एक पगडंडी से, जो पीछे एक छोटे-से स्टेशन को छोड़कर आगे जंगल की तरफ़ बढ़ चली थी, एक आदमी हाथ में लाठी लिये रास्ता काटता जा रहा है। उसके एकदम कृष्ण-वर्णी भीमकाय शरीर से और फटे चीथड़ों से वह गोंड मालूम पड़ता है। उसके चलने के ढंग से ऐसा जान पड़ता है कि रास्ता उसका जाना हुआ है, प्रत्येक पग की ज़मीन पहचानी हुई है।

उसके पीछे एक अधेड़ उम्र की स्त्री चली जा रही है। उसके हाथ में भी लाठी थी, जिसका उसे बार-बार सहारा लेना पड़ता था। उसकी गति भी धीमी थी और उससे भय और सशंकता का भाव टपक पड़ता था। उसके पहरावे से वह शहर की पढ़ी-लिखी मध्यम-श्रेणी की महिला जान पड़ती थी। वह चलते-चलते थक जाती, हाँफने लगती, खाँसने लगती, फिर ठहर जाती। यह देखकर उस गोंड पुरुष को भी, जो उसका पथ-प्रदर्शक जान पड़ता था, ठहरना पड़ता। वह नारी फिर बल समेटती, फिर हिम्मत बाँधती और फिर चलने लगती। वह पुरुष उसकी अशक्त प्रकृति और कमजोरी को महसूस करता था। उसे ढाढ़स बँधाने के लिये कह देता--"अब बहुत थोड़ा बचा है माई!"

वह अन्तर कितना ही क्यों न बचा हो, उस नारी को उस आश्वासन से कुछ शांति अवश्य मिल जाती और एक क्षीण मुस्कराहट उसके श्रान्त और फीके चेहरे पर चमक उठती।

उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, यह स्पष्ट दिखाई देता था। शरीर जीर्ण, आँखें धँसी हुई, गालों की हड्डियाँ बाहर निकली हुई! उसकी खाँसी की आवाज़ उस वन्य-रात्रि की नीरवता में बड़ी भीषण लगती थी।

फिर भी उसकी हिम्मत ग़ज़ब की थी। ऐसे गिरे हुए स्वास्थ्य में भी वह सन्ध्या की गाड़ी से उस छोटे-से स्टेशन पर उतरी और

अपना थोड़ा-सा सामान वहाँ के बाबू के हवाले करके इस गोंड को अपना पथ प्रदर्शक बनाकर निकल पड़ी।

रात अँधेरी थी, रास्ता अनजाना था, जंगल का प्रदेश था और वह गोंड बिलकुल नया आदमी था; लेकिन उसके साथ अकेले जाने में उस स्त्री को कोई डर नहीं लगा। जहाँ वह पहुँचना चाहती थी, उसके बारे में उसका दिल और दिमाग़ साफ़ था। बाकी बातों का विचार करने की उसकी इच्छा नहीं थी, उसे ज़रूरत भी नहीं थी। बस, उस गोंड को देखकर और उससे एक मिनट ही बातचीत करके उसे विश्वास हो गया कि वह भला है, सच्चा है—उससे कोई ख़तरा नहीं, धोखा नहीं।

इसलिये वह उसके पीछे पीछे चली जा रही है--निस्संकोच, निश्चिन्त, निर्भय! वह उसे जंगल में ले जाय, शेर की गुफा में ले जाय, या किसी पहाड़ की कगार पर से ढकेल दे--इसका उसे कोई डर नहीं था। वह तो बेखटके चलती ही चली जा रही है।

चलते-चलते उसका पथ-प्रदर्शक ठिठका, ठहर गया और प्रसन्नता से पुकार उठा--"वह देख माई!"

उस स्त्री ने देखा—इस अन्धेरे में दीपक की एक क्षीण रेखा दिखाई दे रही है। हो न हो, वहाँ किसी मानव का निवास ज़रूर है।

वह उस प्रकाश की किरण की ओर देखती ही खड़ी रह गई, मानो उस घनी सन्ध्या के उस छोटे-से प्रदीप से उसे आशा, आनंद, बल और जीवन का अमृत ही प्राप्त हो रहा हो और वह उसे पीती ही जा रही हो। उसके सारे शरीर में एक विचित्र प्रकार का स्पंदन झंकृत हो उठा।

वह अपनी थकावट बहुत-कुछ भूल गई। उसके मन में उत्साह का संचार हुआ। आख़िर इस दुस्तर और प्रदीर्घ यात्रा का भी अन्त है! और उसके बसेरे का स्थान नज़दीक आ रहा है।

फिर वह चल पड़ी।

क़रीब तीन फर्लांग चलने के बाद वह प्रकाश स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा। उसके पास ही कुछ धुआँ-सा निकलता दिखाई दिया।

पास पहुँचने पर देखा कि जंगल के बीच में ही कुछ खुली जगह है, जहाँ एक बड़ा खेत है। उसी में एक पगडण्डी है जो खेत के बीचोबीच स्थित झोंपड़ी की तरफ़ जा रही है। वह प्रकाश उसी झोंपड़ी में से आ रहा था।

वह स्त्री झोंपड़ी के दरवाज़े पर पहुँची। वह झोंपड़ी नहीं थी, कच्चा मकान था, जिसका दरवाज़ा लकड़ी का था। द्वार खटखटाया—

अन्दर बत्ती अपनी जगह से हिली और कोई दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा। दरवाज़ा खुला और वहाँ एक वृद्धा स्त्री हाथ में कंडील लिये खड़ी दिखाई दी।

"कौन है ?"—उसने कंडील ऊपर उठाकर उस आगन्तुक प्रवासिनी के चेहरे पर प्रकाश फेंकते हुए कहा।

चेहरा देखते ही वह सहमी और कुछ क्षण के बाद एकदम बोल उठी—स्तंभित-सी, आनंदित होकर—"कौन, पद्मा ?"

"शीला बहन !"—ऐसा पुकारकर वह श्रान्त नारी उसके गले लिपट गई और फूट-फूटकर रोने लगी। उसने ऐसी दृढ़ता से आलिंगन किया, जैसे अब कभी वह उसे छोड़ेगी ही नहीं।

शीला भी अपने आँसुओं को नहीं रोक सकी और न उसने रोकने का प्रयत्न ही किया। उसने पद्मा का सिर अपने वक्ष में लिया और उसके बालों पर अपने गाल रख दिये। दोनों स्त्रियों की अश्रु-धाराओं में बाढ़ आ गई।

वह गोंड पथ-प्रदर्शक खड़ा-खड़ा यह दृश्य देखता रहा और फिर लाठी समेटकर चलता बना और अँधेरे में विलीन हो गया।

जब आनंद का फूटा हुआ आवेग कुछ कम हुआ तो शीला बोल उठी—"हैं पद्मा, तुम्हें बुख़ार है !"

"बुख़ार तो नहीं है। चलते-चलते थक गई हूँ—बरसों के बाद आज इतना चली हूँ—इसलिये शरीर गरम लगता होगा।"

"नहीं, नहीं, महज़ यही कारण नहीं है। ज़रूरत तुम्हारी तबीयत ख़राब है। चलो—लेट रहो और आराम करो।"

इसी समय अन्दर से एक आवाज़ आई—"कौन है, शीला ?"

पद्मा को लगा कि उस पूर्व-परिचित स्निग्ध आवाज़ को सुनकर उसके श्रमों का परिहार हो गया, शरीर में एक कम्पन लहरा उठा।

"यह है अपनी पद्मा !" शीला ने बतलाया।

"ओ हो-हो पद्मा ! इतने बरसों के बाद !—आओ आओ, स्वागत है, स्वागत है ! बड़े भाग्य की बात है—"

पद्मावती चन्द्रा इन स्नेह-भरे शब्दों को सुनकर धन्य हो उठी। जिस परम सुख की आशा लिये वह अपने रोग-ग्रस्त जीर्ण शरीर को लेकर तथा अपने एकाकी जीवन के सारे बन्धनों को तोड़कर यहाँ चली आई, वह उसे मिल गया। वह गद्गद हो उठी। अब उसे तनिक भी परवाह नहीं कि वह कितने दिनों तक जियेगी या कब उसका अन्त हो जायगा।

डॉक्टर मधुसूदन ने, जो अपने बिस्तर पर कम्बल ओढ़े लेटा हुआ था, पद्मा को अपने पास बैठा लिया। ज्योंही उसने पद्मा के हाथ का स्नेह स्पर्श किया त्योंही उस नारी ने अनुभव किया कि उसके बदन में बिजली दौड़ गई है !

दो क्षण के बाद पद्मा ने अपना हाथ डॉक्टर मधुसूदन के हाथ में से छुड़ा लिया और उसे कम्बल के भीतर बढ़ाकर डॉक्टर के चरणों पर रख दिया। अपने तप्त और बुभुक्षित हाथों से उसके पैर दबाने लगी।

इतना कर चुकने के बाद उसे अनुभव हुआ कि दुनिया में अब उसे किसी चीज़ की इच्छा नहीं रह गई है—किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं।

शीला ने पद्मा को एक नरम बिस्तर पर लेटा दिया और गरम दूध पीने को दिया। डेढ़-दो घण्टे आराम से पड़े रहने के बाद उसे ज़रा अच्छा लगा। गई हुई ताक़त लौटती-सी नज़र आई। शीला उसी के पास परिचर्या करती बैठी रही।

"डॉक्टर सो गये ?" पद्मा ने पूछा।

"हाँ पद्मा, वे बहुत जल्दी सो जाते हैं- सुबह जल्दी उठना उन्हें पसन्द है न ?"

बाहर सर्दी बढ़ रही थी, इसलिए शीला ने अँगीठी में और कोयले डाल दिये तथा पद्मा के ओढ़ने के लिए एक कम्बल और ला दिया। खुद के लिए भी एक शाल ले आई। दोनों स्त्रियाँ उसी बिस्तर पर सटकर बैठी-बैठी एक दूसरे के स्नेह में समाधान पाने लगी।

"कितने बरसों के बाद भेंट हुई बहन ?" पद्मा ने कहा।

"हाँ, पन्द्रह बरस से ज्यादा हो गये।"

"तब से क्या इस जंगल में ही हो ?"

"हाँ, इसी जंगल में हूँ," शीला ने मुस्कराकर कहा।

पद्मा ने देखा कि शीला के चेहरे पर परम सुख एवं संतोष की दीप्ति जगमगा उठी।

"सुखी तो हो बहन ?"

"अत्यन्त सुखी ! जीवन में जितने उत्कट सुख की कल्पना की जा सकती है, वह सब हमें प्राप्त है। अब हमें और कुछ नहीं चाहिये।"

"जब से वह दुर्घटना घटी तब से क्या यहीं हो ?"

"हाँ, यहीं। एक बार भी शहर नहीं गई।"

"इस जंगल में वक्त कट जाता है ?"

"कट जाता है ? वक्त पूरा नहीं पड़ता, यूँ कहो। दिन के चौबीस घण्टे भी हमें कम मालूम पड़ते हैं। सुबह-शाम रोगियों की सेवा, दिन भर खेती-बाड़ी की देख-भाल और सन्ध्या होते ही मेरे अराध्य की सेवा। और बातों के लिए तो समय ही नहीं मिलता।"

"यहाँ भी अस्पताल खोल रक्खा है ?"

"अस्पताल ही कहो। होमियोपैथी का इलाज करते हैं। वे सलाह देते हैं, मैं दवा देती हूँ।"

"अपने निवास के लिए यह स्थान क्यों चुना, बहन ?"

"यह उनके बाप-दादों की ज़मीन है। हम लोगों ने बाद में पचास एकड़ और खरीद ली। जो कुछ पैसा बचा था, वह सब इसी ज़मीन में लगा दिया। इसी ज़मीन में उनके माता-पिता की काया मिली है और इसी ज़मीन में वे भी मिल जाना चाहते हैं। यहाँ रहकर तो वे सदा स्वर्ग-सुख का अनुभव करते हैं।"

"तुम कभी ऊबती नहीं ?"

"ऊबना कैसे पद्मा ? जहाँ प्रीति की भित्ति मोह या शारीरिक आकर्षण पर होती है, वहाँ ऊब होना अवश्यम्भावी है; किन्तु जब वह भित्ति हृदय और आत्मा के ममत्व पर होती है और त्याग एवं संयम उसके रथ-चक्र हैं, तब वह प्रीति अत्यन्त दिव्य और पुनीत, शाश्वत और चिरंतन हो उठती है। उसमें क्षय नहीं, लय नहीं, अन्त नहीं ! वह तो दिन-प्रति-दिन बढ़ती जाती है और वृद्धावस्था में अत्यन्त परिपक्व और मंगल हो उठती है। वह तो भगवान् का परम वरदान है, जिसके लिये हमारा हृदय कृतज्ञता से परिपूर्ण है। शरीर और चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं पद्मा, लेकिन Heart knows no wrinkles फिर ऊब कैसी, उद्वेग कैसा, बहन !"

पद्मा ने देखा कि शीला का चेहरा उस अँगीठी के क्षीण प्रकाश

में अलौकिक तेज से आलोकित हो उठा। पद्मा स्वयं नारी थी। नारी के हृदय की निस्सीम भावना को वह न समझे तो भला और कौन समझेगा ?

यथार्थ में जीवन के मूल-मन्त्र और प्रीति-प्रासाद की कुंजी इन लोगों ने पाई है, ऐसा उसे लगा और उसका मस्तक आप-ही-आप इन दो प्रणयी हृदयों के सामने श्रद्धा से झुक गया। उनकी आवश्यकताएँ कितनी कम हैं, जीवन कितना सादा है, माँग कितनी थोड़ी है—और सुख कितना अधिक, और प्रेम कितना !

"यह सब तो ठीक है, पद्मा ! लेकिन तुम्हारा क्या हाल रहा, सो तो बताओ ।"

"मेरा हाल ? मेरा हाल क्या रहेगा, बहन मैं पहले भी एकाकिनी थी, अब भी हूँ। मेरे जीवन में बताने लायक क्या है ?—"

फिर भी धीरे-धीरे पद्मा ने अपने गत पन्द्रह वर्षों की कहानी कह सुनाई—

डॉक्टर मधुसूदन की उस दुर्घटना के बाद जब उनका और शीला का मधुर-मिलन हुआ और वे दोनों ज़िला छोड़कर इस देहात में आ बसे तो पद्मा का भी वहाँ मन नहीं लगा। उसने भी और कहीं नौकरी तलाश कर ली और मेरठ के एक कन्या-विद्यालय में उसे अच्छी जगह मिल गई। वहीं उसके कई बरस बीत गये। इसी बीच उसका परिवार भी तितर-बितर हो गया। बहन की शादी हो गई। दोनों भाई अपनी-अपनी रोज़ी अलग कमाने लगे और उसकी माँ मर गई। वह अकेली-की-अकेली रह गई। माँ ने मरने के पूर्व विवाह का खूब आग्रह किया, लेकिन उसने इन्कार ही कर दिया। कारण ? नारी ही नारी के हृदय को समझ सकती है, इसलिये कारण मालूम हो, तो शायद शीला को मालूम हो, या फिर उसकी माँ को उसका आभास हो तो हो; किन्तु किसी पुरुष के सम्पर्क में आते हुए उसे किसी ने नहीं देखा था। 'संभवतः किसी

पुरुष के प्रति उसे आकर्षण नहीं हुआ। जिसके प्रति हुआ होगा उसे आराध्य का स्वरूप देकर ही वह अपने मानस-मन्दिर में उसकी पूजा करती रही होगी। एकाकी जीवन का भार उसके शरीर पर असर करने लगा। वह कमज़ोर होते-होते बाद में यक्ष्मा का घर बन गया। जब उसे स्पष्ट दीख गया कि अब स्वास्थ्य नहीं सँभलेगा और अन्तिम समय निकट आ रहा है तो उसने नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया और जो कुछ जमा किया था, वह लेकर शीला और मधुसूदन के प्रश्रय की ओर चल पड़ी। पन्द्रह बरसों में उनका एक लाइन से भी पत्र-व्यवहार नहीं हुआ था, लेकिन आज न जाने मन की कौन-सी प्रेरणा, कौन-सा आत्म-विश्वास उसे यहाँ खींच लाया कि अन्तिम दिनों में उसे यहीं सहारा मिलेगा। इच्छा यही हुई कि मरण हो तो इन दो प्रणयी व्यक्तियों के साये में हो और आँखें बन्द हों तो मधुसूदन को अन्तिम बार देखकर।

शीला यह सब समझ न सकी हो सो बात नहीं। इस दुखिता नारी को – जिसने डॉ॰ मधुसूदन को उन दिनों भी नहीं छोड़ा था जब स्वयं शीला उसे छोड़कर चली गई थी और जब डॉक्टर को किसी का सहारा भी नहीं था—अन्तिम दिनों में शीला और उसके प्रिय पात्र के कारण किंचित् सुख मिले और उसकी मृत्यु सुखद हो, यह उसकी हार्दिक इच्छा थी; क्योंकि पद्मा अब अधिक दिन नहीं जियेगी, वह उसे स्पष्ट दिखाई देता था। इसी तरह शायद वह पद्मा के ऋण के बोझ को कुछ हलका कर सकेगी। इसलिये उसने पद्मा का अत्यन्त आत्मीयता और उत्साह के साथ स्वागत किया। उसे लगा कि वह जैसे उसी के व्यक्तित्व का, उसी के प्राणों का और उसी की आत्मा का एक अविभाज्य अंग है।

पद्मा इस स्नेहसिक्त स्वागत को पाकर मानो जीवन की फलश्रुति पा चुकी। जीवन में जो कुछ भोगा, उसका जैसे आज परिमार्जन हो गया। अब इसी मीठे दामन के नीचे शीघ्र से शीघ्र आँखें सदा

के लिये मुँद जायँ, इसके सिवा उसे और कोई इच्छा नहीं है।

रात काफ़ी बढ़ चुकी थी, इसलिये शीला ने उसे कम्बल ओढ़ाकर सुला दिया और उसके माथे का चुम्बन लेकर उससे कहा--"अब सो रहो बहन ! इतनी थकी माँदी हो, अब कल बातें होंगी।"

शीला चली गई, किन्तु पद्मा को नींद कहाँ ? रह-रहकर उसके मन में इन वृद्ध प्रणयी युगल की दिव्य प्रीति के विचार ही लहरें पैदा करते। जीवन की सन्ध्या में भी उनकी उदात्त प्रीति में कैसा अनुपम सङ्गीत भरा पड़ा है ! उसे लगा, उनकी प्रीति भोग नहीं, त्याग है; सुख नहीं, साधना है। उनके अन्तःकरण प्रणय से प्लावित हैं, किन्तु इससे उनके हृदय संकीर्ण नहीं, विशाल हो गये हैं और उनकी परिधि में केवल एक स्त्री और पुरुष—केवल तुम और मैं--नहीं हैं, उसमें ये सब गोंड और कोरकू हैं, ये भारत के दरिद्र एवं उत्पीड़ित बच्चे हैं। यह ज़मीन है, यह वायु मण्डल है, यह आकाश है—सारा संसार है, जिसमें उनकी सूक्ष्मात्मा सारे विश्व की महान आत्मा से एकरूप हो चुकी है। ये व्यक्ति यदि प्रभु के प्रतीक नहीं तो और क्या हैं ?—

मध्य रात्रि हो चुकी थी। सारी सृष्टि शांत एवं सुप्त थी; किन्तु पद्मा का हृदय शांत नहीं था—

इतने में उस निविड़ निशीथ की नीरवता को चीरती हुई संगीत की कुछ नाद-लहरियाँ उसके कान में पड़ीं। इतनी बीती रात में यह दिव्य संगीत कैसा ?

उसने ध्यान से सुना—

सितार पर नीलांबरी राग की स्वर-लहरियाँ नर्तन कर रही थीं, जिसमें सारा वातावरण मधुर नाद से मुखरित हो उठा था।

फिर कुछ देर के बाद किसी नारी के कोकिल-कण्ठ से गीत के विह्वल स्वर निकले—'मेरे जनम-मरण के साथी।'

ओह ! मीराबाई का यह सुन्दर भजन था। पद्मावती अपने

सारे प्राण कानों में केन्द्रित करके सुनने लगी।

स्वर सीधे-सादे थे, किन्तु उनके पीछे जो हृदय था, वह कितना गद्गद, कितना भावना-विभोर, कितना विकल था!

वह मंत्र-मुग्ध सर्प की तरह उन स्वरों की ओर बे-अख्तियार खिंच गई। कब वह शैय्या से उठी और कब स्वर्गीय संगीत की दिशा की ओर चलने लगी, इसका उसे भान नहीं। वहाँ जाना उचित है या अनुचित, इसका भी कोई ध्यान नहीं।

फिर सुना—

'तोहे नहिं बिसरूँ दिन राती।'

वह अधिक पास गई तो सुना—

'ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ रोय रोय अखियाँ थाकीं।'

इसे कहते-कहते गायिका के कण्ठ में रुदन उतर आया—उसमें कितनी व्यथा, कितनी विकलता भरी थी।

उसने देखा कि उस दम्पति के शयन कक्ष का दरवाज़ा बन्द नहीं है। कोने में कंडील छोटी बत्ती किये हुए रखा है। वह जहाँ खड़ी थी, वहाँ सम्पूर्ण अँधेरा था। उसने अन्दर झाँका तो देखा—

शीला सितार के साथ यह रसभरा भजन गा रही है। उसकी दाहिनी गोद में सितार है और बायीं गोद में डॉक्टर मधुसूदन का सिर रखा हुआ है। शीला के दाहिने हाथ की उंगलियाँ सितार पर नाच रही हैं और बायाँ हाथ डॉक्टर की छाती पर है।

उस मंद प्रकाश में भी पद्मा ने अवलोकन किया कि शीला की आँखों में आँसू की धाराएँ बह रही हैं और डॉक्टर के नेत्रों की हक़ीक़त भी इससे अलग न होगी, क्योंकि बीच बीच में वह शीला का अंचल अपनी आँखों को लगाता जाता है।

शीला ने गीत की अन्तिम दो-पंक्तियाँ गाईं—

'मीरा के प्रभु परम मनोहर, हरि चरणांचित राती।'

'पल पल पिय को रूप निहारूँ दरस दरस सुख पाती।'

इन स्वरों में वह अपने सारे प्राण, अपना सारा चैतन्य उँडेल रही थी। वह गाती चली जा रही थी, आत्म-विस्मृत-सी, बेसुध, बेकाबू !

पद्मा वहीं मंत्र-मुग्ध-सी खड़ी रह गई। उसके पैर वहीं गड़ गये और सारी सुध-बुध जाती रही। उसकी आँखों से भी पानी बहने लगा और हृदय गद्गद हो गया। उसे किसी वस्तु का भान नहीं रहा - उसका अपना, अपने आसपास के वातावरण का, उस रात्रि का, जीवन का, विश्व का—किसी का नहीं। आँखों के जल के कारण उसके सामने का दृश्य धुँधला होने लगा। किन्तु कानों में संगीत के दिव्य स्वर अब भी स्पष्टता से पड़ ही रहे थे।

उसे लगा कि उस गीत की माधुरी ने उसकी आत्मा को ऊपर उठाकर न जाने किस पुण्य सतह पर लाकर रख दिया। उसने अनुभव किया कि विश्व के ब्रह्म-संगीत की प्रतिध्वनि उसके अन्तःकरण में झंकृत हो रही है और वह उस दैवी संगीत से व्याप्त मानव एवं अति-मानव सृष्टि का एक अभेद्य अंग है, जिसने आज ईश्वर के दिव्यत्य की झाँकी देखी है। वह अपने सौभाग्य पर गर्वित हो उठी।

इस पुनीत दृश्य को देखकर उसका मस्तक आप ही आप झुक गया और आँसू उसी ज़मीन पर टप-टप करके गिरने लगे—

मानो मन्दिर में ईश्वर के चरणों पर अर्घ्य चढ़ाया जा रहा हो।